पूर्वांचल खेती

वर्ष : 33 सितम्बर 2023 अंक : 09

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

वर्ष 33 | सितम्बर 2023 | अंक 09

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

चने की वैज्ञानिक खेती 01
अर्चना देवी, प्रीती कुमारी एवं डी० के० सिंह

राई एवं सरसों की वैज्ञानिक खेती 06
संजीत कुमार, सोमेन्द्र नाथ एवं अनिल कुमार पाल

लहसुन की जैविक खेती 08
राजीव कुमार सिंह, सुरेन्द्र कुमार सोनकर, सुरेश कुमार कन्नौजिया

स्ट्रॉबेरी की खेती, कब और कैसे करें 10
शैलेंद्र सिंह, एस.पी. सिंह

ग्रामीण महिलाओं के लिय ढिंगरी मशरूम (ऑयस्टर) की खेती एक व्यवसाय 12
प्रदीप कुमार एंव ओम प्रकाश

फसल अवशेष न जलाएं बल्कि उसका प्रबंधन करें 14
देवेश कुमार, अरविंद कुमार सिंह एवं संदीप सिंह कश्यप

नकली एवं मिलावटी उर्वरकों की पहचान विधि 16
सुरेन्द्र प्रताप सोनकर, सुरेश कुमार कन्नौजिया, श्री राजीव कुमार सिंह एवं लाल बहादूर गौड़

किसान एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की ओर बढ़ाये अपने कदम 17
अभिषेक यादव, अनिल कुमार पाल एवं संजीत कुमार

बेहतर स्वास्थ्य एवं आय का स्रोत गृहवाटिका 18
एस. पी. सिंह एवं एस. के. तोमर

पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन वृद्धि में प्रोबायोटिक का महत्व एवं उपयोग 21
एस.के. सिंह, एस. के. तोमर एवं आर. आर. सिंह

मुर्गी पालन मे आवास का महत्व 24
अमित कुमार सिंह, आर के सिंह एवं संदीप कुमार

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें 26

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 27

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	05542–248019	9415687643
2.	बस्ती	डॉ. एस.एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
4.	फैजाबाद	डॉ. विनायक शाही	05278–254522	8755011086
5.	मऊ	डॉ. वी.के. सिंह	0547–2536240	8005362591
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	0541–2260595	9458362153
7.	बहराइच	डॉ. के.एम. सिंह	05252–236650	9307015439
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	–	9455501727
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. ओम प्रकाश	05541–241047	9452489954
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. शशिकान्त यादव	–	9415188020
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. पी.के. मिश्रा प्रभारी	–	9936645112
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. आर.के. सिंह	–	9452990600
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. विनय कुमार	–	–
25.	आजमगढ़ द्वितीय	डॉ. एल.सी. वर्मा	–	7376163318

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
2.	गोण्डा	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
3.	देवरिया	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
4.	गाजीपुर	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9026289336	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	8787289358	0548–223690

डॉ. आर. आर. सिंह
अपर निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

विभिन्न बदलावों से गुजर रहे कृषि क्षेत्रों में समय का महत्व नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। कृषि की विभिन्न क्रियाओं में विशेषकर बुवाई, सिंचाई, निराई, कटाई के वैज्ञानिक अंतराल को यदि कृषक अपनी आदतों में शामिल नहीं करते तो उन्हें इसका नुकसान उठाना पड़ता है और इसकी भरपाई सम्भव नहीं हो पाती है। खाद्यान्न से अलग हटकर देखें तो अगेती सब्जी, फल व फूल की खेती सामान्य समय की अपेक्षा ज्यादा लाभकारी होती है। इन्हीं बातों के दृष्टिगत पत्रिका के इस अंक में विभिन्न फसलों की सामयिक सस्य क्रियाओं का उत्पादन विधियों पर लेख प्रस्तुत किये गये हैं।

आशा है कि पत्रिका का यह अंक हमारे किसान भाईयों व प्रसार कार्यकर्ताओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

(आर.आर. सिंह)

चने की वैज्ञानिक खेती

अर्चना देवी, प्रीती कुमारी एवं डी० के० सिंह

भारत विश्व का सर्वाधिक चना उत्पादक देश है तथा यहां विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 64–65 प्रतिशत चना पैदा होता है। भारत में चना की खेती रबी शरद काल के मौसम में सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में की जाती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से देश में 75 से 80 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में चना की खेती की जाती है। देश के कुल चना उत्पादन का लगभग 95 प्रतिशत मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, बिहार, एवं हरियाणा राज्य से प्राप्त होता है। देश के विभिन्न भागों में देशी चना, जो कत्थई से पूरे या हल्के पीले रंग का होता है, उगाया जाता है। विगत वर्षों में शोध एवं प्रसार के प्रयासों के फलस्वरूप काबुली चना (सफेद दाना) की खेती एवं उत्पादन बढ़ा है। देश के सभी प्रान्तों में जहां चना की खेती होती है, काबुली एवं देशी, दोनों ही प्रकार की प्रजातियों को समान रूप से उगाया जाता है। देशी चना की अपेक्षा काबुली चना की फसल में बीमारियों, कीटों एवं सूखे आदि का प्रभाव अधिक पड़ता है।

शाकाहारी मनुष्यों के भोजन में चना का स्थान प्रोटीन देने वाले एक प्रमुख स्रोत के रूप में है। इसकी जड़ों में उपस्थित नाइट्रोजन (नत्रजन) स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु वायुमंडल में उपस्थित नत्रजन का योगिकीकरण करके भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि करते हैं। चना की गहरी झगड़ा जड़े भूमि में काफी गहराई तक जाती हैं जिससे मृदा में वायु संचार अच्छी प्रकार से होता है। इस प्रकार चना का मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ टिकाऊ खेती में भी महत्वपूर्ण स्थान है। चना के दानों का प्रयोग भोजन में छोले के रूप में, दाल के रूप में एवं सलाद की तरह काफी प्रचलित है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में चना की नई पत्तियों (नई शाखाएं एवं पत्तियों) को हरी सब्जी (साग) के रूप में खाया जाता है। परंतु सर्वाधिक रूप से चना का प्रयोग बेसन के रूप में विभिन्न प्रकार के मीठे एवं नमकीन पकवानों को बनाने में किया जाता है।

जलवायु

चना की खेती साधारणतः बारानी दशाओं में रबी (शरद्कालीन) फसल की तरह की जाती है। असिंचित दशा में चना का लगभग 78 प्रतिशत क्षेत्र देश के विभिन्न भागों में फैला हुआ है। कुछ क्षेत्रों (22 प्रतिशत) में इसकी खेती सिंचित दशा में भी की जाती है, मुख्यतः जहां देर से बोई जाने वाली प्रजातियां ली जाती हैं तथा सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं। शरदकालीन फसल होने के कारण चना की खेती कम वर्षा वाले तथा हल्की ठंडक वाले क्षेत्रों में की जाती है। फूल आने की अवस्था में यदि वर्षा होती है तो फूल झड़ने के कारण फसल को बहुत हानि होती है। फसल को क्षति पहुंचाने का अन्य कारण ज्यादा वर्षा होने से पौधों में अत्यधिक वानस्पतिक वृद्धि भी है। अधिक वनस्पति वृद्धि होने पर पौधे गिर जाते हैं जिससे फुल व फलियां सड़कर खराब हो जाती हैं। फसल में फलियाँ बनने पर या पकते समय ओले आदि से भी फसल को क्षति पहुँचती है। चना के अंकुरण के लिए कुछ उच्च तापक्रम की आवश्यकता होती है, परंतु पौधों की उचित वृद्धि के लिए साधारणतया ठंडे मौसम की आवश्यकता होती है। ग्रीष्मकाल के प्रारंभ में यदि अचानक उच्च तापमान हो जाता है, तभी फसल को नुकसान होता है, क्योंकि पौधों को पकने के लिए क्रमिक रूप से बढ़ते हुए उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। साधारण रूप से चना की फसल को बीज से बीज (बुआई से कटाई तक) के दौरान 30 से 35 सेंटीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। यदि मानसून (दक्षिण–पश्चिम) की वर्षा प्रभावी रूप से सितंबर के अंत में या अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में होती है तब बारानी क्षेत्रों में चना की भरपूर फसल मिलती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा, आजमगढ़, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229, उ०प्र०
ज्येष्ठ कृषि विपणन निरीक्षक, जौनपुर, उत्तर प्रदेश

भूमि का चुनाव

चना की खेती बलुई दोमट भूमि से लेकर दोमट तथा मटियार भूमि में की जा सकती है। काबुली चना के लिए अपेक्षाकृत अच्छी भूमि की आवश्यकता होती है। दक्षिण भारत में मटियार–दोमट तथा काली मिट्टी में, जिसमें पानी की प्रचुर मात्रा धारण करने की क्षमता होती है, चना की सफलतापूर्वक खेती की जाती है। परन्तु आवश्यक है कि पानी के भराव की समस्या न हो। भूमि में जल निकासी का उचित प्रबंधन उतना ही आवश्यक है जितना कि सिंचाई से जल देना। हल्की ढलान वाले क्षेत्रों में चना की फसल अच्छी होती है। ढेलेदार मिट्टी में देशी चना की भरपूर फसल ली जा सकती है।

खेत की तैयारी

चना के लिए खेत की मिट्टी बहुत ज्यादा महीन या भुरभुरी नहीं होनी चाहिए तथा न ही बहुत ज्यादा दबी हुई। अच्छी खेती के लिए भूमि की सतह ढीली और ढेलेदार होनी चाहिए। जड़ों की समुचित वृद्धि के लिए भूमि की गहरी जुताई करना लाभप्रद होता है। इसके लिए खरीफ की फसल काटने के पश्चात् एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर देनी चाहिए। इसके बाद, बुआई के लिए खेत को तैयार करते समय 2–3 जुताइयाँ कल्टीवेटर से करनी चाहिए। बड़े ढेलों को तोड़ने तथा खेत को समतल बनाने के लिए पाटा लगाना चाहिए। खेत की तैयारी के समय अंतिम जुताई करने से पूर्व 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मेलाथियान धूल (चूर्ण) भली–भॉति मिला देना चाहिए जिससे मिट्टी में मौजूद हानिकारक कीट नष्ट हो जाएं तथा फसल को दीमक आदि से बचाया जा सके। जहां तक संभव हो, क्षारीय एवं उच्च भूमिगत जल वाले क्षेत्रों में चना की खेती नहीं करनी चाहिए।

सस्य क्रियाएं

बीजोपचार

(अ) रोग एवं कीटनाशी रसायनों से बीजोपचार

उकठा एवं जड़ गलन रोग से फसल के बचाव हेतु 2.5 ग्राम थीरम या 1 ग्राम बाविस्टीन अथवा 1.5 ग्राम थीरम तथा 0.5 ग्राम बाविस्टीन के मिश्रण से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप अधिक होता है, उन खेतों में 20 ई.सी. क्लोरीपायरीफॉस को पानी में घोलकर बीज को उपचारित करके बोना लाभप्रद होता है।

(ब) जीवाणु संवर्धन (राइज़ोबियम कल्चर) से बीजोपचार

विभिन्न दलहनों के लिए अलग–अलग तरह का राइजोबियम कल्चर होता है। अतः चना के बीजों को उपचारित करने के लिए संस्तुत राइज़ोबियम कल्चर का ही प्रयोग करना चाहिए। एक पैकेट राइज़ोबियम कल्चर (200 ग्राम) 10 किलोग्राम बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। 100 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोल लेना चाहिए। घोल को गर्म करके ठण्डा कर इसमें एक पैकेट राइज़ोबियम कल्चर को अच्छी तरह डण्डे से चलाकर मिला देना चाहिए। बाल्टी या घड़े में 10 किलोग्राम बीज डालकर घोल में मिला देना चाहिए ताकि राइज़ोबियम बीच की सतह तक चिपक जाए। इस प्रकार राइज़ोबियम कल्चर से सने हुए बीजों को कुछ देर तक छाँव में सुखा लेना चाहिए। जहां तक संभव हो, बीजोपचार सांयकाल में करें ताकि तेज धूप में बीजों के सूखने की संभावना न रहे। धूप में बीजों को सुखाने से राइज़ोबियम जीवाणु मर जाते हैं जिससे वांछित लाभ नहीं मिलता है।

(स) पी.एस.बी. कल्चर (फास्फेट सॉल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया) से बीजोपचार

राइज़ोबियम कल्चर की भाँति ही फास्फेट घुलनशील बैक्टीरिया पी.एस.बी. कल्चर के पैकेट भी उपलब्ध रहते हैं। जिन्हें बाजार या कृषि विश्वविद्यालयों से खरीदा जा सकता है। राइज़ोबियम कल्चर से बीज उपचार की तरह ही पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए।

बुवाई का समय

असिंचित अवस्था में चना की बुआई का उचित समय अक्टूबर का द्वितीय अथवा तृतीय सप्ताह है। सिंचित अवस्था में चना की बुआई नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक करनी चाहिए। उत्तर भारत में चना की खेती धान की फसल काटने के बाद भी की जाती है, ऐसी स्थिति में बुआई दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक अवश्य कर

लेनी चाहिए। बुवाई में अधिक विलम्ब करने पर पैदावार कम हो जाती है तथा फसल में चना फली भेदक का प्रकोप भी अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। देश के मध्य भाग में अक्टूबर का प्रथम तथा दक्षिणी राज्यों में सितंबर का अंतिम सप्ताह तथा अक्टूबर का प्रथम सप्ताह चना की बुआई के लिए सर्वोत्तम होता है।

बुवाई कल्टीवेटर के पीछे पोरे से कूड़ों में करनी चाहिए। जहाँ नमी समुचित है वहाँ पर बुआई लाइन से करनी चाहिए। सीड ड्रिल से भी बुआई की जा सकती है। भूमि में नमी की जाँच के लिए थोड़ी–सी मिट्टी मुट्ठी में लेकर दबानी चाहिए, यदि गोला बन जाए तो समझना चाहिए कि खेत में पर्याप्त नमी है। गोले को जमीन पर लगभग 2 से 3 फुट की ऊंचाई से खेत में गिराने पर यदि गोला ना टूटे तो समझना चाहिए कि खेत में ज्यादा नमी है। ऐसी स्थिति में खेत में बुवाई नहीं करनी चाहिए। यदि बुआई करनी ही पड़े तो पाटा दूसरे दिन तथा हल्का–सा ही लगाना चाहिए अन्यथा पौधों का जमाव कम होता है। यदि खेत में नमी कुछ कम हो तो बीज का नमी से अच्छा सम्पर्क बनाने के लिए बुआई गहराई में करनी चाहिए तथा उसके ऊपर पाटा अच्छी तरह लगा देना चाहिए। ऐसा करने से अंकुरण पूरे खेत में अच्छा एवं समान रूप से होता है।

अन्य फसलों की तरह चना की अच्छी उपज लेने के लिए खेत में पौधों की समुचित संख्या का होना अत्यन्त आवश्यक है। साधारणतया पौधों की संख्या 25–30 प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से रखी जाती है। इसके लिए पंक्तियों के बीच की दूरी 30–45 सेंटीमीटर तथा पौधों के मध्य दूरी 8–10 सेंटीमीटर रखी जाती है। असिंचित एवं पीछेती बुआई की दशा में से कूंड़ से कूंड़ की दूरी 30 सें.मी. तथा सिंचित अवस्था, काबर या मार भूमि में कूड़ों के बीच की दूरी 45 सेंटीमीटर रखनी चाहिए।

बीज दर

चना के बीज की मात्रा दानों के आकार (भार), बुवाई के समय एवं ढंग और भूमि की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करती है। यदि प्रजाति बड़े दाने वाली है तब प्रति हेक्टेयर 80–85 किलोग्राम बीज का उपयोग करना चाहिए। छोटे दाने वाली प्रजातियों का बीज 60–65 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से होना चाहिए। पछेती बुआई की दशा में बीज की मात्रा 20–25 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। यदि बीज में अंकुरण की क्षमता कम है तो बीज की मात्रा तद्नुसार बढ़ा देनी चाहिए। उदाहरणार्थ– पौधों की संख्या 33 प्रति वर्ग मीटर रखनी है तथा बीज का अंकुरण क्षमता 80 प्रतिशत तथा बीजों का भार 15 ग्राम हो तो 62 किलोग्राम बीज की प्रति हेक्टेयर (15×33×10/80=62) आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक

यदि फोन की उर्वरा शक्ति अधिक हो अथवा खेतों में पूर्व फसल को अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरक दिए गए हों, वहाँ उर्वरकों की मात्रा परिस्थिति के अनुसार घटाई जा सकती है। चना के पौधों की जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथियों में नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणु पाए जाते हैं जो वायुमंडल से नत्रजन अवशोषित कर लेते हैं। इस नत्रजन का उपयोग पौधे अपनी वृद्धि में करते हैं। सामान परिस्थितियों में चना की अच्छी उपज लेने के लिए 20 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश व 20 किलोग्राम गंधक का उपयोग करना चाहिए। हाल ही में वैज्ञानिक शोधों से पता चला है कि असिंचित अवस्था में 2 प्रतिशत यूरिया के खोल का पर्णीय छिड़काव फली बनते समय करने पर चना की उपज में वृद्धि होती है। सूक्ष्म तत्वों में जिंक (जस्ता) का प्रयोग 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए। जिन खेतों में बोरान तथा मालिब्डेनम की कमी हो, वहाँ 10 किलोग्राम बोरेक्स पाउडर, 1 किलोग्राम अमोनियम मोलिब्लेट प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर चना की फसल से भरपूर उपज प्राप्त होती है। मृदा प्रशिक्षण के लिए कृषि विभाग एवं कृषि विश्वविद्यालयों की सहायता ली जा सकती है।

सिंचाई

प्रायः चना की खेती असिंचित दशा में की जाती है, परंतु अधिक सूखा होने पर यदि पानी की सुविधा हो तो फली बनते समय एक सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में पहली सिंचाई, बुवाई के

45–60 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई आवश्यकतानुसार फलियों में दाना बनते समय की जानी चाहिए। यदि शरद्कालीन वर्षा (महावट) हो जाए तो दूसरी सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फूल आते समय चना की फसल में सिंचाई करने से हानि होती है, अतः फूल आते समय सिंचाई कदापि ना करें। सिंचाई बहुत जल्दी करने से वानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती है, परंतु पैदावार अच्छी नहीं होती है। अतः यदि दो सिंचाईयों के लिए पर्याप्त जल संसाधन उपलब्ध हो तो पहली सिंचाई शाखाएं बनते समय (फूल आने के पहले) दूसरी सिंचाई 80 प्रतिशत फली बन जाने के बाद (दाना बनते समय) करने से चना की 25–30 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

खरपतवार नियन्त्रण

खेत से खरपतवार निकाल देने या उनके नियन्त्रण से भरपूर उपज प्राप्त होती है। खरपतवार नियन्त्रण से खेत में डाले गए खाद एवं उर्वरकों का उपयोग चना के पौधों द्वारा होने से उपज में वृद्धि होती है तथा पौधों में समुचित मात्रा में प्रकाश एवं वायु संचार होता है । खरपतवार नियन्त्रण की विभिन्न विधियाँ निम्नवत हैं :

(अ) कर्षण क्रियाएं : बुआई के 30–35 दिन बाद पहली निराई व गुड़ाई कर खरपतवार नियन्त्रण करना चाहिए तथा दूसरी निराई–गुड़ाई 60–70 दिन बाद करनी चाहिए।

(ब) खरपतवारनाशी रसायन : पेन्डीमेथालिन 0. 75–1.25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के तुरन्त बाद (बुआई के 72 घंटों के अन्दर) छिड़काव करने से मौसमी खरपतवार नष्ट हो जाते हैं या फिर उगने के बाद मर जाते हैं। खेत की ऊपरी सतह में नमी होने पर खरपतवारनाशी रसायन प्रभावशाली होता है। जिन खेतों में गेहूं का माना या जंगली जई का प्रकोप अधिक है यहाँ आइसोप्रोटोरोन की 0.75–1. 00 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की मात्रा बोने के तुरन्त बाद डालनी चाहिए।

शीर्ष शाखाएं तोड़ना

जब चना के पौधे लगभग 20–25 से.मी. के हों अथवा पौधों में फूल आने या बनने से पहले की अवस्था हो, तब शाखाओं के ऊपरी भाग को तोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से चना के पौधों में शाखाएं अधिक निकलती हैं। फलस्वरूप उपज में वृद्धि होती है। शीर्ष शाखाएं तोड़ने की क्रिया असिंचित क्षेत्रों में नहीं की जाती है, क्योंकि अत्यधिक शाखाओं और पत्तियों होने से वाष्पीकरण (वाष्पोत्सर्जन) बढ़ जाता है, जिससे भूमि में नमी की कमी हो जाती है तथा फसल को सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन कम हो जाता है।

फसल चक्र

साधारणतः उत्तर भारत में चना की खेती ज्वार, बाजरा, मक्का, उर्द एवं मूँग तथा धान की फसल काटने के बाद की जाती है। चना की फसल के बाद खरीफ में मक्का आदि की फसल उगाने पर इनमें 50–60 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से नत्रजन कम देनी पड़ती है। अधिकांश स्थानों पर चना की खेती एकल फसल के रूप में होती है। उत्तर–पूर्वी एवं उत्तर–पश्चिमी भागों में चना की अन्तः फसल सरसों के साथ (6 पंक्तियाँ चना 2 पंक्तियाँ सरसों) तथा मिश्रित खेती के साथ प्रचलित है। हाल के परीक्षणों के अनुसार दक्षिणी भारत के चना उत्पादक क्षेत्रों में चना + धनिया की अन्तः खेती लाभप्रद पायी गई है।

पूर्वी भारत एवं छत्तीसगढ़ में जहाँ अधिक वर्षा होती है, धान की फसल वाले खेतों में कभी–कभी उतेरा (पैरा) खेती होती है। इस विधि में धान की खड़ी फसल में कटाई से 7–10 दिन पूर्व चना का बीज छिटक दिया जाता है, क्योंकि धान की कटाई देर से होने पर चना की बुआई विलम्बित हो जाती है। नमी की अधिकता के कारण कर्षण क्रियाओं का देर से सम्भव होना इसका प्रमुख है। इस तरह बुआई करने से पौधों की अपेक्षित संख्या नहीं मिलने से उत्पादन कम मिलता है, किन्तु समय से बुआई का लाभ फसल को मिल जाता है। सामान्य परिस्थितियों में की जाने वाली बुआई की अपेक्षा उतेरा खेती के लिए 20 प्रतिशत अधिक बीज दर रखनी चाहिए तथा उर्वरकों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए ताकि भरपूर उपज प्राप्त हो सके।

प्रजातियों का चयन

देश के विभिन्न प्रदेशों के लिए समय–समय पर

राष्ट्रीय एवं प्रदेश स्तर पर कई प्रजातियाँ संस्तुत की गई हैं। प्रमुख रूप से उकठा रोग रोधी, अंगमारी रोग रोधी, शीघ्र पकने वाली एवं देर से बोई जाने के लिए उपयुक्त, बड़े दाने की देशी एवं काबुली चना एवं विशेष परिस्थितियों के लिए उपयुक्त प्रजातियों का विकास एवं उनकी संस्तुति की गई है। अखिल भारतीय चना सुधार परियोजना एवं भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान के समन्वित प्रयासों के फलस्वरूप विगत 20–22 वर्षों में लगभग 75 से ज्यादा प्रजातियों का विकास किया गया है। प्रमुख प्रजातियों का विवरण नीचे तालिका में दिया गया है

(अ) रोगरोधी प्रजातियाँः रोगरोधी प्रजातियों के विकास को महत्वपूर्ण माना गया है, उकठा रोग के प्रति अवरोधी एवं अंगमारी रोग सह्य प्रजातियाँ निम्नवत् हैं :

उकठा रोगरोधीः के. डब्ल्यू. आर. 108, जे.जी. 11, राजस, हरियाणा चना 1, डी.सी.पी. 92–3, जी.सी.पी. 101, जी.सी.पी. 105, जे.जी. 315, जी.पी.एफ. 2, विजय, आलोक, जे.जी. 74, जे.जी. 322, जी. एन. जी. 663, उदय, शुभ्र (आई.पी.सी.के. 2002–29), पूसा चमत्कार, पूसा काबुली 1003, अन्नेगिरी, विकास, महामाया 1, धारवाड प्रगति, सम्राट, जे.जी. 16. जी. एन. जी. 1581

अंगमारी रोगसह्यः सम्राट, पी.बी. जी. 5. हिमाचल चना ।

(ब) बड़े दाने कीः काबुली चना तथा बड़े दाने की संस्तुत प्रजातियों निम्नवत् हैं। इनकी खेती से किसानों को अधिक लाभ मिल सकेगा।

देशी चना (20 ग्राम से ज्यादा प्रति 100 दानों का वजन) पूसा 256, सम्राट, पूसा 391, धारवाड पूसा 362, सी. ओ. 3, सी. ओ. 4

काबुली चना (25 ग्राम से ज्यादा प्रति 100 दानों का वजन) शुभा (आई.पी.सी.के. 2002–29), आई. सी. सी.बी. 2, के. ए.के. 2, पूसा काबुली 1003, पूसा चमत्कार, जवाहर काबुली चना 1, फूले जी 95322, बिहार के.ए.के. 2, शुभा (आई.पी.सी. के. 2002–29), जवाहर काबुली चना 1, फूले जी. 95322 तथा पूसा चमत्कार का दाना बड़ा (लगभग 30 ग्राम प्रति 100 दाने) है।

तालिका 1: उत्तर प्रदेश के लिए संस्तुत चना की उन्नतशील प्रजातियाँ

प्रजातियाँ	उत्तर प्रदेश
	डी.सी.पी. 92–3, पन्त जी 186. के. डब्ल्यू. आर. 108, जी.पी.एफ. 2, जी. एन. जी. 1581, गुजरात चना 4, जे.जी. 16, करनाल चना 1, पूसा 256, पूसा 372, वरदान, जे. जी, 315, उदय, आलोक, विश्वास, हरियाणा चना, सम्राट, जी.पी.एफ. 2, करनाल चना 1, पूसा 1003, सद्भावना, प्रगति, सूर्या, शुभा (आई. पी.सी. के. 2002–29), राजस पूसा 547, हरियाणा काबुली चना 2

(स) देर से बोने के लिए : पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं बिहार के उन भागों के लिए जहाँ धान की फसल के बाद चना की खेती की जाती है, उदय, पूसा 547, राजस एवं पूसा 372 की संस्तुति की गई है। इन प्रजातियों को दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक बोया जा सकता है। इसी तरह उत्तर प्रदेश में पन्त जी. 186 को देर से बोया जा सकता है।

(द) अन्य विशेष परिस्थितियों के लिए : जिन क्षेत्रों में शरद्कालीन वर्षा होती है या अधिक नमी या भूमि की उर्वरता के कारण अधिक वानस्पतिक वृद्धि होने से चना के पौधे गिर जाते हैं और भरपूर उपज नहीं मिलती है, वहाँ डी. सी. पी. 92–3 की खेती करने से भरपूर लाभ कमाया जा सकता है। इसी प्रकार लवणता सह्य प्रजाति करनाल चना 1 (सी.एस.जी. 8962) की बुआई से साधारण लवणता वाले क्षेत्रों में चना की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

संस्तुत प्रजातियाँ

देश के विभिन्न भागों के लिए राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर अब तक 125 से ज्यादा प्रजातियों का विकास एवं उनकी संस्तुति की गई है। उत्तर प्रदेश की संस्तुत प्रजातियों के नाम तालिका 1 में दिए जा रहे हैं। इन सभी संस्तुत प्रजातियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी एवं बीज के लिए इच्छुक किसान एवं अन्य व्यक्ति राष्ट्रीय बीज निगम, राज्य बीज निगम, विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों एवं भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर से सम्पर्क कर सकते हैं।

राई एवं सरसों की वैज्ञानिक खेती

संजीत कुमार*, सोमेन्द्र नाथ** एवं अनिल कुमार पाल***

किसान भाईयों, राई एवं सरसों का रबी तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान है। प्रदेश में अनेक प्रयासों के बाद भी राई के क्षेत्रफल में विशेष वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसका प्रमुख कारण हैं कि सिंचित क्षमता में वृद्धि के कारण अन्य महत्वपूर्ण फसलों के क्षेत्रफल का बढ़ना। इसकी खेती सीमित सिंचाई की दशा में अधिक लाभदायक होती है। इसकी खेती करनें में नवीनतम वैज्ञानिक तकनीक अपनाने से उत्पादन एवं उत्पाकदता में वृद्धि होती है।

खेत की तैयारीः खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए। यदि खेत में नमी कम हो तो पलेवा करके तैयार करना चाहिए। ट्रैक्टर चालित रोटावेटर द्वारा एक ही बार में अच्छी तैयारी हो जाती है परन्तु एक खेत में बार–बार रोटावेटर नही करना चाहिए।

उन्नतिशील प्रजातियॉ :–

1. सिंचित क्षेत्र दशाः. नरेन्द्र राई (एन.डी.आर. –8501), नरेन्द्र अगेती राई–4, आर0 एच0–749, नरेन्द्र स्वर्णा–राई–8 (पीली), आर0 एच0–725, वरूणा (टी 59), बसंती (पीली), रोहिणी, माया, उर्वशी, पीताम्बरी

2. असंचित क्षेत्रों के लिए प्रजातियॉः वैभव, वरूणा (टा. 59)

3. विलम्ब से बुवाई के लिए– आशीर्वाद, वरदान

क्षारीय/वणीय भूमि हेतुः नरेन्द्र राई, सी.एस.–52, सी.एस.–54

बीज दरः सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में 4–5 किग्रा0/हे0 की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज शोधनः बीज जनित रोगों से सुरक्षा हेतु 2.5 ग्राम थीरम प्रति किलो की दर से बीज को उपचारित करके बोये। मैटालेक्सिल 1.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज शोधन करने से सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोकथाम हो जाती है।

बुवाई का समय एवं विधिः राई बोने का उपयुक्त समय बुन्देलखंड एवं आगरा मंडल में सितम्बर के अंतिम सप्ताह में तथा शेष क्षेत्रों में अक्टूबर प्रथम पखवारा हैं बुवाई देशी हल के पीछे उथले कूंडो में 45 सेन्टीमीटर की दूरी पर करना चाहिए। बुवाई के बाद बीज ढकने के लिए हल्का पाटा लगा देना चाहिए। असिंचित दशा में बुवाई का उपयुक्त समय सितम्बर का द्वितीय पखवाड़ा है। विलम्ब से बुवाई करने पर माहू का प्रकोप एवं अन्य कीटों एवं बीमारियों की आशंका रहती है।

उर्वरक की मात्राः उर्वरको का प्रयोग मिट्टी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाए। सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन 120 किग्रा.फास्फेट 60 किग्रा. एवं पोटाश 60 किग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। फास्फोरस का प्रयोग सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में अधिक लाभदायक होता है। क्योंकि इससे सल्फर की उपलब्धता भी हो जाती है। यदि सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग न किया जाए तो गंधक की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए 40 किग्रा./हे. की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिए तथा असिंचित क्षेत्रों मे उपयुक्त उर्वरकों की आधी मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग की जाय। डी.ए.पी. का प्रयोग किया जाता है तो इसके साथ बुवाई के समय 200 किग्रा. जिप्सम प्रति हे0 की दर से प्रयोग फसल के लिए लाभदायक होता है तथा अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 60 कु. प्रति हे. की दर से सड़ी हुई गोबर की का प्रयोग करना चाहिए।

निराई–गुड़ाई एवं विरलीकरणः बुवाई के 15–20 दिन के अन्दर घने पौधों को निकालकर उनकी आपसी दूरी 15 सेमी कर देना आवश्यक खरपतवार नष्ट करने के लिए एक नराई गुड़ाई सिंचाई के पहले और दूसरी पहली सिंचाई के बाद करनी चाहिए, रसायन खरपतवार नियंत्रण करने पर बुवाई से पूर्व फ्लूक्लोरोलिन 45 ई.सी. की 2.2 लीटर प्रति 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से छिड़काव कर भलीभांति हैरो चलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए या पैन्डीमेथलीन 30 ई.सी. 3.3 लीटर प्रति हे. की दर से बुवाई के दो तीन दिन के अन्दर 800–1000 लीटर पानी में घोलकर समान रूप से छिड़काव करें।

सिंचाईः राई नमी की कमी के पत्ती फूल आने के समय तथा दाना भरने की अवस्थाओं में विशेष

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, **विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी0पी0बी0), ***विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहॉव, बलिया

संवेदनशील होती है। अतः अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सिंचाइ करें यदि उर्वरक का प्रयोग भारी मात्रा में (120 किलेग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फेट तथा किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर) किया गया हो तथा मिट्टी हल्की हो तो अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए 2 सिंचाई पहली बुवाई के 30–35 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई वर्षा न होने पर, बुवाई के 55–65 दिन बाद करें।

फसल सुरक्षा–

(क) प्रमुख कीट–

1. आरा मक्खी,
2. चित्रित बग,
3. बालदार सूँडी,
4. माहूँ,
5. पत्ती सुरंगक कीट

नियंत्रण के उपाय–

1. गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए।

2 संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

3 आरा मक्खी की सूड़ियों को प्रातः काल इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।

4 प्रारम्भिक अवस्था में झुण्ड में पायी जाने वाली बालदार सूड़ियॉ पत्तियॉ को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

1. प्रारम्भिक अवस्था में माहू से प्रभावित फूलों, फलियों एवं शाखाओं को तोड़कर माहू सहित नष्ट कर देना चाहिए।

यदि कीट का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर पर हो गया हो तो निम्नलिखित कीटनाशों का प्रयोग करना चाहिए।

(ख) – प्रमुख रोग

1. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा–
2. सफेद गेरूई
3. तुलसिता–

(ग) नियंत्रण के उपाय–

1. बीज उपचार : 1. सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग के नियंत्रण हेतु मैटालैक्सिल 35 प्रतिशत डब्लू.एस की 2.0 ग्राम पति किग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए।

2. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु थीरम 75 प्रतिशत डब्लूपी की 2.5 ग्राम प्रति किग्रा.बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए।

2. भूमि उपचारः 1. भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु बायोपेस्टीसाइड (जैव कवच नाशी) ट्राइकोडरमा बिरडी 1 प्रतिशत डब्लू.पी. अथवा ट्राइकोडरमा हारजिएनम 2 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2.5 किग्राम प्रति हे.60–75 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खााद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देने से राई/सरसों के बीज/भूमि जनित आदि रोगों के प्रबन्धन में सहायक होता है।

3. पर्णीय उपचारः 1. अल्टनेरिया पत्ती धब्बा, सफेद गरूई एवं तुलासिता रेाग के नियंत्रण हेतु मैकोजेब 75 डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा अथवा जिनेब 75 प्रतिशत डब्लू. पी. की 2.0 किग्रा. अथवा जिस्म 80 प्रतिशत डब्लू.पी की 2.0 किग्राम अथवा कापर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्लू.पी. की 3.0 किग्रा मात्रा प्रति हे. लगभग 600–750 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख खरपतवार–

बथुआ, सेन्जी, कृष्णनील, हिरनखुरी, चटरी–मटरी, अकरा–अकरी, जंगली गाजर, गजरी, प्याजी खरतुआ, सत्यानाशी आदि।

नियंत्रण के उपाय :–

1. यदि खरपतरवारनाशी रसायन का प्रयोग न करना हो तो खुरपी से निराई कर खरपतवारों का नियंत्रण करत रहना चाहिए।

2. खरपतवारनाशी रसायन द्वारा खरपतवार नियंत्रण करने हेतु फ्लूक्लोरेलीन 45 प्रतिशत ई.सी. की 2.2 ली. मात्रा प्रति हे0 की दर से लगभग 800–1000 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त पहले मिट्टी में मिलाना चाहिए अथवा पेण्डीमेथलीन 30 प्रतिशत ई. सी. की 3.30 लीटर प्रति हे. उपरोक्तनुसार पानी में घोलकर फ्लैट फैन नाजिल से बुवाई के 2–3 दिन के अन्दर समान रूप से छिड़काव करें।

कटाई–मढ़ाईः–

जब 75 प्रतिशत फलियॉ सुनहरे रंग की हो जायें, फसल को काट कर सुखाकर व मड़ाई करके बीज अलग करना चाहिए। देर करने से बीजों के झड़ने की आशंका रहती हे। बीज को खूब सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए।

उपज :– वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर असिंचितं दशा में 10 – 12 कु0/हे0 उपज प्राप्त हो जाती है तथा सिंचितं दशा में 25–30 कु0 प्रति हे0 उपज प्राप्त होती है।

लहसुन की जैविक खेती

राजीव कुमार सिंह*, सुरेन्द्र कुमार सोनकर** एवं सुरेश कुमार कन्नौजिया***

लहसुन की जैविक विधि से खेती किसानों के लिए वरदान हो सकती है क्योंकि कंदीय फसलों में आलू और प्याज के बाद लहसुन एक महत्वपूर्ण फसल है। यह नकदी फसल के रूप में हमारे देश में रबी मौसम में उगायी जाती है। यदि कृषक लहसुन की जैविक खेती करे तो एक तो उनकी उत्पादन लागत कम होगी दूसरा स्वस्थ और उच्च गुणवत्ता के कन्द प्राप्त होगें, जबकि मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर भी कोई दुष्परिणाम नहीं होगा।

वहीं रासायनिक खेती से रसायनों और कीटनाशकों के प्रयोग से लहसुन के कंद विषैले हो जाते हैं, जिसके उपयोग से मानव शरीर में अनेकों बीमारियां जन्म लेती है और पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। इसलिए लहसुन कि जैविक खेती की आवश्यकता है, किसान बन्धु थोड़ी सी जागरूकता के साथ लहसुन कि जैविक खेती सफलतापूर्वक कर सकते हैं और अच्छी पैदावार भी प्राप्त कर सकते हैं।

लहसुन के लिए उपयुक्त जलवायुः–

लहसुन एक सख्त फसल है, जिसके पौधे में पाला बर्दाश्त करने की क्षमता होती है इसलिए इसकी वृद्धि के समय ठण्डा और नम मौसम तथा शल्क कंदों के परिपक्वता के समय अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। लहसुन कि खेती मुख्यतः रबी मौसम में की जाती है क्योंकि अत्यन्त गर्म तथा लम्बे दिनों वाला समय इसके कंदों कि बढ़वार के लिए उपयुक्त नहीं होता है। ऐसी जगह जहां न तो बहुत गर्मी हो और न ही बहुत ठण्ड हो, लहसुन कि जैविक खेती के लिए उपयुक्त है। लहसुन की खेती समुद्र तल से 1000 से 1300 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भली भांति की जा सकती है।

भूमि का चयन–

लहसुन की जैविक खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परन्तु जीवांशयुक्त दोमट मिट्टी इसकी अच्छी पैदावार के लिए उपयुक्त है। वैसे बलुई दोमट से लेकर चिकनी दोमट मिट्टी में भी इसकी खेती की जा सकती है। भारी भूमि में कंद टेढ़े–मेढ़े तथ छोटे बनते हैं और खुदाई कठिन होती है। बहुत हल्की भूमियों में उगाये गये कंदों का वजन हल्का तथा रंग एवं भण्डारण क्षमता अच्छी नहीं होती है।

इसकी खेती हेतु मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होने के साथ–साथ जल निकास की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। मिट्टी का पी.एच.मान 6–7 तक होना चाहिए। बहुत क्षारीय भूमि लहसुन की जैविक खेती हेतु उपयुक्त नहीं होती है। मिट्टी सुधारक के प्रयोग के उपरांत आंशिक रूप से सुधरी हुई भूमि में जीवांश की पर्याप्त मात्रा मिलाकर 8.5 पी.एच. मान तक लहसुन की जैविक खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

लहसुन की किस्मः–

किसान बन्धुओं को लहसुन की जैविक फसल से अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए अपने क्षेत्र की प्रचलित और उत्तम पैदावार देने वाली, के साथ–साथ विकाररोधी किस्म का चयन करना चाहिए और जहां तक संभव हो सके जैविक प्रमाणित बीज ही उपयोग में लायें। हमारे देश की कुछ प्रचलित उन्नत किस्में इस प्रकार हैं–

यमुना सफेद (जी–1), 2 3 5 (जी–50), (जी. 282), (जी 189), ग्रीफाउण्ड व्हाइट (जी 41) एग्रीफाउड पार्वती (जी 313) पार्वती (जी. 323) जमनगर सफेद, गोदावरी (सलेक्सन–2) स्वेता (सलेक्शन 10) टी–56–4, भीमा, ओंकार, भीमा पर्पल, वीएल गार्टिक–1 और वी एल लहसुन–2 आदि प्रमुख किस्में हैं।

खेत की तैयारीः–

लहसुन की जैविक फसल हेतु गर्मी की जुताई करके उसमें मौजूदा कीटों की अवस्थाओं को नश्ट करके हरी खाद हेतु उपयुक्त फसल जैसे– सनई या ढैंचा की बुआई करें और समय से हरी खाद की फसल को मिट्टी में पलट कर उसे सड़ने हेतु पर्याप्त नमी उपलब्ध करायें इसके बाद दो से तीन जुताई करके खेत को अच्छी प्रकार समतल बनाकर क्यारों तथा नालियों में बांट दें। क्यारी की चौड़ाई इस प्रकार रखनी चाहिए कि मेड़ों पर बैठकर निराई–गुड़ाई आसानी से की जा सके। लम्बाई भूमि के तल की आवश्यतानुसार रखी जा सकती है। इसके बाद सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट क्यारियों में अच्छी तरह मिला दें।

कूड़ में बुवाई–

इस विधि में हैंड हो की सहायता से वांछित दूरी पर कूड़े बनाली जाती हैं। इन कूड़ों में लहसुन के जवे को हाथ ही सहायता से गिरा दिया जाता है। इसके बाद इनको भुरभुरी मिट्टी से ढ़क दिया जाता है।

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान), **विषय वस्तु विशेषज्ञ (प्रसार), ***वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बक्शा, जौनपुर–प्रथम

छिटकवां विधि

इस विधि में बुवाई 15–20 सेमी. की दूरी पर 06 सेंमी. ऊंची पतली मेढ़ पर दस सेंटीमीटर की दूरी पर करने पर अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

चूंकि लहसुन की बुवाई की सबसे उपयुक्त विधि डिबलिंग और उसके बाद कुंड में बुवाई है, इसलिए आगे इसी विधि के अनुसार वर्णन किया गया है।

बुवाई का समय–

लहसुन की जैविक खेती से अच्छी पैदावार के लिए मैदानी भागों में लहसुन की बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर से नवम्बर तक है और पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च से मई तक का समय उपयुक्त माना गया है।

बीज व बीज मात्रा–

लहसुन के कंदों में कई कलिया (क्लोव्स) होती हैं। इन्ही कलियों को गांठों से अलग करके बुवाई की जाती है। अधिक पैदावार और अच्छी गुणवत्ता के लिए लहसुन की बुवाई हेतु बड़े आकार के क्लोव्स (जवे) लहसुन के कंदों में कई लिया (क्लोव्स) होती हैं। इन्ही कलियों को गांठों से अलग करके बुवाई की जाती है। अधिक पैदावार और अच्छी गुणवत्ता के लिए लहसुन की बुवाई हेतु बड़े आकार के क्लोव्स (जवे) जिनका व्यास 8'10 मीटर हो, प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए शल्क कंद के बाहरी तरफ वाली कलियों को चुनना चाहिए।

कंद के केन्द्र में स्थित लंबी खोखली कलिया बुवाई के लिए अनुपयुक्त होती हैं। क्योंकि इन से अच्छे कंद प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार एक हे. क्षेत्र में 15ग10 सेमी. रोपण दूरी रखने पर लहसुन की बुवाई हेतु 8–10मिमी. व्यास के लगभग 5 –7 कुन्तल (500–700कु.) जवा की आवश्यकता पड़ती है।

भूमि एवं बीज उपचार–

मृदा उपचार– 2.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर ट्राइकोडर्मा विरिडी को 60–70 किग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर 8–10 दिन तक हल्की नमी बनाये रखकर छाया में रखने के उपरान्त बुआई से पूर्व आखिरी जुताई के समय भूमि में मिला देना चाहिए और साथ में 200 किग्रा. नीमखली का भी उपयोग करें।

भाल्क कंद या बीज उपचार– बुआई से पहले कलियों को ट्रोईकोडर्मा 200 ग्रा. प्रति 15–20 ली. पानी के घोल में 15–20 मिनट डुबोयें।

रोपण की दूरी–

सम्पूर्ण गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए लहसुन की जैविक फसल को पर्याप्त धूप, हवाएं वंकर्षण क्रियायें सुविधानजक ढंग से सम्पन्न करने हेतु जवों (क्लोव) को उपयुक्त दूरी (पंक्ति से पंक्ति ग पौधे से पौधे) प्रदान करते हुए बीज बुवाई की जानी चाहिए। लहसुन में रोपण की दूरी अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग होती है।

कम दूरी पर रोपाई करने से लहसुन के रोगों में विशेषकर बैगनी धब्बारोग का प्रकोप अधिक होता है। मैदानी क्षेत्रों में उन्नतशील किस्मों से अधिक व्यास के जवे (क्लोव्स) तथा बड़े आकार के निर्यात योग्य शल्ककंद पैदा करने के लिए लहसुन की बुवाई 15 ग 10 सेंमी. की दूरी पर करने की संस्तुति की गई है।

बुवाई का ढ़ंग–

लहसुन की जैविक खेती हेतु बुवाई उपरोक्त संस्तुत दूरी पर लगभग 5–6 सेंमी. गहरी करते हैं। बुवाई करते समय यह ध्यान देना आवश्यक है, किकलियों (क्लोव्स) का नुकीला भाग ऊपर ही रखा जाये। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

खाद की मात्रा–

लहसुन की रासायनिक खेती से अच्छी पैदावार के लिए 100 से 120 किग्रा. नाइट्रोजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस तथा पोटाश 40 किग्रा. की प्रति हे. आवश्यकता पड़ती है। परन्तु लहसुन की जैविक खेती में उपरोक्त तत्वों की पूर्ति के लिए 125–175 कु. नादेप कम्पोस्ट खाद या 40–50 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ 2 किग्रा. प्रति हे. की दर से जैव उर्वरक को अन्तिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए। इससे मुख्य पोशक तत्वों और सूक्ष्म पोशक तत्वों की पूर्ति संभव है। खड़ी फसल में जीवामृत और मटका खाद का उपयोग भी उपज बढ़ाने में लाभप्रद पाया गया है।

सिंचाई प्रबंधन–

समान्यतया लहसुन को वानस्पतिक वृद्धि के समय 7ग8 दिन के अन्तर पर तथा परिपक्वता के समय 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के बाद की जाती है। अंकुरण के लिए उपयुक्त भूमि नमी, फील्ड की क्षमता 80–100 प्रतिशत होती है। लहसुन की वृद्धि काल में भूमि में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए अन्यथा कंदों का विकास प्रभावित होता है। लहसुन उथली जड़ वाली फसल है, जिसकी अधिकांश जड़ें भूमि के ऊपर 5–7 सेंमी. के स्तर में रहती है। इसलिए प्रत्येक सिंचाई में मिट्टी को इस स्तर तक नम कर देना चाहिए। उत्तर–भारत में साधरणतया सर्दी के मौसम में 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाइ करते हैं, परन्तु गर्मियों में सिंचाई प्रति सप्ताह करते हैं। जिस समय गांठें बन रहीं हों, सिंचाई जल्दी–जल्दी करते हैं। जब फसल परिपक्वता पर पहुंच जाये तो सिंचाई बंद कर खेत सूखने देना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 20 पर)

स्ट्रॉबेरी की खेती, कब और कैसे करें

शैलेंद्र सिंह एवं एस.पी. सिंह

स्ट्रॉबेरी की खेती पहाड़ी क्षेत्रों के मुकाबले मैदानी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर की जाने लगी है। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र कई अन्य राज्यों के किसान इसकी खेती में दिलचस्पी लेने लगे हैं। परम्परागत खेती के मुकाबले स्ट्रॉबेरी की खेती अधिक मुनाफा देने वाली फसलों की श्रेणी में गिना जाता है।

स्ट्रॉबेरी को पॉलीहाउस, हाइड्रोपॉनिक्स और सामान्य तरीके से उगाया जा सकता है. स्ट्रॉबेरी की रोपाई वैरायटियों के अनुसार की जाती है. सामान्य तौर पर मैदानी क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की रोपाई सितंबर से अक्टूबर तक कर सकते है वही ठंडी जलवायु वाले क्षेत्रों में इसकी रोपाई फरवरी–मार्च में भी की जा सकती है।

स्ट्रॉबेरी की खेती कैसे करें

दुनिया भर में स्ट्रॉबेरी की लगभग 600 वैरायटी उपलब्ध है लेकिन भारत में इसकी कुछ प्रजातियों की खेती की जाती है जैसे कामरोजा, स्वीट चार्ली, विंटर डाउन आदि. स्ट्रॉबेरी देखने में जितनी बज होती है, होने साथ साथ बहुत आकर्षक और स्वादिष्ट फल है. स्ट्रॉबेरी में विटामिन सी, विटामिन ए और के भरपूर मात्रा में पाई जाती है। इसका इस्तेमाल कील मुंहासे हटाने, आंखों की रोशनी और दांतों की चमक, रूप निखारने के लिए सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है. इसके अलावा इसका उपयोग जैम, चॉकलेट, आइसक्रीम, मिल्क–शेक बनाने में किया जाता है

कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार पूरी दुनिया में स्ट्रॉबेरी की अलग–अलग 600 प्रजातियाँ पाई जाती है लेकिन भारत में व्यावसायिक दृष्टि से इसकी खेती करने के लिए विंटर डाउन, विंटर स्टार, ओफ्रा, कमारोसा, चांडलर, स्वीट चार्ली, ब्लैक मोर, एलिस्ता, सिसकेफ़, फेयर फाक्स आदि किस्मों की खेती की करते है।

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए खाद् और उर्वरक

स्ट्रॉबेरी के पौधे काफी नाजुक होते है इसलिए उनको समय–समय पर खाद् और उर्वरक देना चाहिए. मिट्टी की जाँच के अनुसार खाद् और उर्वरक उपयोग करें. सामन्य भूमि के लिए 0 से 5 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति एकड़ की दर से भूमि की तैयारी के समय खेत में डालें. खेत तैयार करते समय 100 किग्रा. फास्फोरस व 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ डालना चाहिए. रोपाई के उपरांत टपक सिंचाई विधि द्वारा निम्नलिखित घुलनशील उर्वरकों को दिया जाना चाहिए

स्ट्रॉबेरी के पौधों की सिंचाई

पौधे लगाने के तुरंत बाद ड्रिप या स्प्रिकंलर से सिंचाई करें।

समय समय पर नमी को ध्यान में रखकर सिंचाई करते रहना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी में फल आने से पहले सूक्ष्म फव्वारे से सिंचाई कर सकते।

फल आने के बाद टपक विधि से ही सिंचाई करे ताकि फल खराब न हो।

स्ट्रॉबेरी के पौधों को सर्दी से कैसे बचाएं

स्ट्रॉबेरी की खेती पोली हाउस और बिना पोली हाउस दोनों तरीके से की जा सकती है। यदि आपके पास पॉली हाउस है तो आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है यदि आपके पास पोली हाउस नहीं है तो आपको चिंता करने की जरुरत नहीं है। स्ट्रॉबेरी की फसल को ठण्ड में पड़ने वाले पाले से बचने के लिए लो टनल का इस्तेमाल कर सकते है। यह प्लास्टिक पारदर्शी होनी चाहिए और 100 से 200 माइक्रोन वाली होनी चाहिए। स्ट्रॉबेरी मांग बाजार में बहुत अधिक होती है. स्ट्रॉबेरी की खेती किसानो के लिए फायदे का सौदा हो सकती है. इसकी खेती से किसान 10–15 लाख रुपए प्रति एकड़ तक कमा सकता है।

अनुकूल जलवायु

स्ट्रॉबेरी के लिए उपयुक्त जलवायु के अनुसार ही स्ट्रॉबेरी की खेती करें अन्यथा नुकसान हो सकता है। स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए 20 से 30 डिग्री तापमान उपयुक्त माना गाया है।

उपयुक्त मिट्टी

स्ट्रॉबेरी की खेती लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है. उचित जल निकासी वाली बलुई दोमट

मिट्टी में स्ट्रॉबेरी के पौधों का विकास अच्छा होता है. स्ट्रॉबेरी की खेती के भूमि का पीएच मान 6 से 7 के मध्य होना चाहिए।

खेत की तैयारी

स्ट्रॉबरी के लिए खेत की कैसे करें? यह जानना बहुत जरुरी है. जिससे स्ट्रॉबेरी के पौधों की आसानी से रोपाई हो सके।

स्ट्रॉबेरी की रोपाई सितंवर से नवंबर के मध्य की जाती है। इसके अनुसार खेत को तैयार करें।

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर खेत को खुला छोड़ दे ताकि खेत में मौदूज खरपतवार और कीट नष्ट हो जायेंगे।

इसके बाद 40–45 टन पुरानी सड़ी गोबर की खाद प्रति एकड़ के हिसाब से खेत डालें।

खाद डालने के बाद खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करें।

इसके बाद कल्टीवेटर से खेत की 2–3 बार आडी–तिरछी गहरी जुताई कर खेत को पाटा लगाकर समतल करे लें।

आखरी जुताई पर 60 किलोग्राम पोटाश और 100 किलोग्राम फास्फोरस को प्रति एकड़ की दर से खेत में डालें

स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए बेड कैसे तैयार करें

स्ट्रॉबरी की रोपाई के लिए खेत तैयार होने के बाद अब बारी आती है कि स्ट्रॉबेरी के लिए बेड कैसे तैयार करे इसकी जानकारी नीचे वताई गई है उसको ध्यान में रखकर आप स्ट्रॉबेरी के लिए बेड तैयार कर सकते है।

बेड तैयार करने का तरीका

बेड की चैड़ाई 2.5– 3 फिट रखें और बेड से बेड की दूरी डेढ़ फिट रखें।

सिंचाई के लिए ड्रिप सिस्टम की पाइप लाइन बिदा दें।

पाइप लाइन विछाने के वाद वेड पर मल्चिग बिछा दें।

पौधे लगाने के लिए प्लास्टिक मल्चिग में 20 से 30 सेमी की दूरी पर छेद करे।

अब आप बेड पर स्ट्रॉबेरी के पौधों की रोपाई कर सकते।

स्ट्रॉबेरी की प्रजातियाँ

स्ट्रॉबेरी में लगने वाले कीट और रोग

कीटों में पतंगे, मक्खियाँ चेफर, स्ट्राबेरी जड़ विविल्स

घुलनशील उर्वरकों की मात्रा ग्राम/एकड़/दिन

समय	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
10 अक्तूबर से 20 नवम्बर	250	200	400
2 नवम्बर से 20 दिसम्बर	600	200	600
24 दिसम्बर से 20 जनवरी	250	160	600
24 जनवरी से 28 फरवरी	700	200	900
4 मार्च से 14 मार्च	600	200	900

झरबेरी एक प्रकार का कीड़ा, रस भृग, स्ट्रॉबेरी मुकट कीट कण जैसे कीट इसको नुकसान पंहचा सकते है।

बचावः– इसके लिए नीम की खली पौधों की जड़ों में डाले इसके अलावा पत्तों पर पत्ती स्पाट, ख़स्ता फफूंदी, पत्ता ब्लाइट का प्रकोप हो सकता है।

स्ट्रॉबेरी की तुड़वाई

जब स्ट्रॉबेरी के फल का रंग 70 प्रतिशत चटक लाल हो जाये तो स्ट्रॉबेरी को तोड़ लेना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी फलों को मार्किट की दूरी के अनुसार तोडना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी की तुड़बाई अलग अलग दिनों में करनी चाहिए।

स्ट्रॉबेरी के फल को नहीं पकड़ना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी के फल की दण्डी को पकड़ कर तोडना चाहिए।

स्ट्रॉबेरी की पैकिंग

स्ट्रॉबेरी की पैकिंग प्लास्टिक की प्लेटों में करनी चाहिए। पैकिंग के बाद उन्हें हवादार स्थान पर रखें, जहा का तापमान 5 डिग्री के आसपास होना चाहिए

स्ट्रॉबेरी की फसल में पैदावार

स्ट्रॉबेरी की फसल से अच्छी पैदावार कई बातों पर निर्भर करती है. जैसे उगाई जाने वाली किस्म, जलवायु, मृदा का स्तर, पौधों की संख्या, फसल प्रबंधन इत्यादि. यदि फसल का सही तरीके से प्रबंधन और देखभाल की जाये तो एक एकड़ क्षेत्रफल में 80 से 100 क्विंटल फलों का उत्पादन लिया जा सकता है. स्ट्रॉबेरी के एक पौधे से 800–900 ग्राम फल प्राप्त कर सकते हैं।

स्ट्रॉबेरी की फसल में लागत और कमाई

आमतौर पर एक एकड़ स्ट्रॉबेरी की फसल में लगभग 2–3 लाख रुपये की लागत आती है. पैदावार होने के वाद खर्च निकालकर 5–6 लाख का फायदा हो जाता है।

ग्रामीण महिलाओं के लिय ढिंगरी मशरूम (ऑयस्टर) की खेती एक व्यवसाय

प्रदीप कुमार* एवं ओम प्रकाश**

ढिंगरी (ऑयस्टर) मशरूम की खेती धान का पुआल, गेहूं के भूसा, केले की तने तथा गन्ने की बारीक खोई पर पॉलीथीन के बैग में आसानी से किया जा सकता है। वैसे गेहूं का भूसा इसकी खेती हेतू सर्वोतम है। ढिंगरी मशरूम प्रजाति का उत्पादन हमारे देश के कुछ राज्यों में जैसे कर्नाटक, महाराश्ट्र, तमिलनाडु, केरल, बिहार तथा पूर्वी उ0प्र0 में जबकि तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस तक किया जा सकता है। इसका फसल चक्र भी 45–60 दिन का होता है इस प्रजाति के मशरूम को सुखाया जा सकता है। सन ड्राइंग विधि इस मशरूम को सुखाने की सबसे आसान विधि है। ढिंगरी मशरूम का उत्पादन अक्टूबर से दिसम्बर तक तथा फरवरी से अप्रैल तक आसानी से हो सकता है। मधुर स्वाद एंव आकर्षक लुआब के कारण इसकी गणना उत्तम व्यंजनो में होती है। ढिंगरी मशरूम में प्रोटीन के साथ–साथ आवश्यक अमीनों–अम्ल भी पाये जाते है। इसका उपयोग उच्च रक्तचाप एंव हाइपरटेंशन रोगियों को सुझाया जाता है क्योंकि ढिंगरी मशरूम में सोडियम एंव पौटेशियम का अनुपात अधिक होता है तथा यह मोटापा को भी घटाता है। इससे प्राप्त कम मात्रा में कैलोरी एंव प्रोटीन में समृद्ध होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिए आदर्श भोज्य पदार्थ है। और साथ ही साथ बेरोजगार नवयुवक/नवयुवतियां को रोजगार के अवसर से अवगत कराता है और बिना खेत–खलिहान के खेती करना एंव कम लागत से अधिक लाभ प्राप्त होता है। अधिक जानकारी के लिए अपने निकटतम कृशि विज्ञान केन्द्र से सम्पर्क कर सकते है।

ढिंगरी मशरूम उत्पादन करने की विधि– ढिंगरी मशरूम उत्पादन करने के लिए हमें उत्पादन कक्ष की जरूरत होती है जो बाँस, कच्ची, ईटों, पॉलीथीन तथा पुआल से बनाऐ जा सकते हैं। इन उत्पादन कक्षों में खिड़की तथा दरवाजों पर जाली लगा होना चाहिए। ये किसी भी साइज के बनाये जा सकते हैं जैसे 18 फुट ;ल0द्ध ग 15 फुट ;चौ0द्ध ग 10 फुट ;ऊं0द्ध के कमरे में लगभग 300 बैग रखे जा सकते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाय की हवा के उचित प्रबंधन के लिए दो बड़ी खिड़कियां तथा दरवाजे के सामने भी एक खिड़की होनी चाहिए। उत्पादन कक्ष में नमी बनाये रखने के लिए एक एयर कूलर लगाया जा सके तो बेहतर होगा।

पौशाधार तैयार करना– ढिंगरी मशरूम उत्पादन के लिए ऊपर लिखित किसी भी फसल के अवशिष्ट का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि भूसा या पुआल पुराना तथा सड़ा गला नहीं होना चाहिए। जिन पौधों के अवशिष्ट सख्त तथा लम्बे होते हैं उन्हैं मशीन द्धारा 2 से 3 से0 मी0 साईज का काट लिया जाता है। कृषि अवशेषों में कई तरह के हानिकारक सूक्ष्मजीवी फंफूद, बैक्टीरिया तथा अन्य जीवाणु पाए जाते हैं। अतः सर्वप्रथम कृषि अवशेषों को प्रयोग करने के लिए सबसे पहले उसे जीवाणु रहित किया जाता है जिसके लिए निम्नलिखित कोई भी विधि द्धारा कृषि अवशेषों को उपचारित किया जा सकता है।

1– गर्म पानी उपचार विधि– इस विधि में कृषि अवशेषों को छिद्रदार जूट के थेले या बोरे में भर कर रात भर गीला किया जाता है तथा अगले दिन इस पानी को गर्म कर (60–65° सेल्सियस) लगभग 20–30 मिनट उपचारित किया जाता है। उपचारित भूसे को ठंडा करने के बाद बीज मिलाया जाता है।

2– रासायनिक विधि– इस विधि में कृषि अवशेषों को विशेष प्रकार के कृषि रसायन या दवाईयों से जीवाणु रहित किया जाता है। इस विधि में एक 200 लीटर ड्रम या टब में 90 लीटर पानी में लगभग 12–14 किलो भूसे को गीला कर दिया जाता है। तत्पश्चात् एक प्लास्टिक की बाल्टी में 10 लीटर पानी तथा 5 ग्राम बेवस्टीन तथा फार्मेलीन (125 मि0ली0) का घोल बना कर भूसे वाले ड्रम को पॉलीथीन शीट या ढक्कन से अच्छी तरह से बंद कर दिया जाता है। लगभग 12–14 घटें बाद उपचारित भूसे को ड्रम से बाहर किसी प्लास्टिक की शीट या लोहे की जाली पर डाल कर 2–4 घटों के लिए छोड़ दिया जाता है। जिससे अतिरिक्त पानी बाहर निकल जायेगा तथा फार्मेलीन की गंध भी खत्म हो जायेगी।

*वैज्ञानिक (प्लांट प्रोटेक्शन), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एंव अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहना सिद्धार्थनगर

बीजाई करना– ढिंगरी का बीज हमेशा ताजा प्रयोग करना चाहिए जो 30 दिन से ज्यादा पुराना नहीं होना चाहिए। भूसा तैयार करने से पहले ही बीज खरीद लेना चाहिए तथा 1 क्विंटल सूखे भूसे के लिए 10 किलो बीज की जरूरत होती है। बीजाई करने के दो दिन पहले 2 प्रतिशत फार्मलीन से उपचारित कर लेना चाहिए। प्रति 4 किलो गीले भूसे में लगभग 100 ग्राम बीज अच्छी तरह से मिला कर पॉलीथीन की थैलियों (40–45 से.ल. ग 30–35 से. चौ.) में भर देना चाहिए। पॉलीथीन को मोडकर बन्द कर देना चाहिए या अखबार से भूसे को कबर कर देना चाहिए जिससे भूसे की नमी बनी रहे। पॉलीथीन को अगर बन्द करना है तो उसमें लगभग 5 मि.मी. के 10–12 छेद चारों तरफ तथा पैन्दें में कर देना चाहिए। जिससे बैग का तापमान 30 सेल्सियस से ज्यादा बढ नही जाय।

फसल प्रबन्धन– बिजाई करने के पश्चात् थैलियों को एक उत्पादन कक्ष में बीज फैलने के लिए रख दिया जाता है। बैगों को हफ्ते में एक बार अवश्य देख लेना चाहिए कि बीज फैल रहा है या नहीं। अगर किसी बैग में हरा, काला या नीले रंग की फंफूद या मोल्ड दिखाई दे तो ऐसे बैंगो को उत्पादन कक्ष से बाहर निकाल कर दूर फेंक देना चाहिए। बीज फैलते समय पानी, हवा या प्रकाश की जरूरत नही होती है। अगर बैग तथा कमरे का तापमान 30 सेल्सियस से ज्यादा बढने लगे तो कमरे की दिवारों तथा छत पर पानी का छिड़काव दो से तीन बार करें या एयर कुलर चला दें। इसका ध्यान रखना चीहिए की बैगों पर पानी जमा न हो। लगभग 15 से 25 दिनो में मशरूम का कवक जाल सारे भूसे पर फैल जाएगा तथा बैग सफेद नजर आने लगेगे । इस स्थिति में पालीथीन हटा लेना चाहिए। गर्मियो के दिनो में (अप्रैल–जून) पॉलीथीन को पूरा नहीं हटाना चाहिए क्योंकि बैगों में नमी की कमी हो सकती है। पॉलीथीन हटाने के बाद फलन के लिए कमरे में तथा बैगों पर दिन में 2 से 3 बार पानी का छिड़काव करना चाहिए। कमरे में लगभग 6 से 8 घंटे तक प्रकाश देना चाहिए जिसके लिए खिड़कियों पर शीशा लगा होना चाहिए या कमरों में ट्यूबलाइट का प्रबंधन होना चाहिए। उत्पादन कमरों में प्रतिदिन 2 से 3 बार खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए या एग्जास्ट पंखों को चलाना चाहिए जिससे कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 800 पी.पी.एम. से अधिक न हो। ज्यादा कार्बन डाइऑक्साइड होने से ढिंगरी का डंठल बड़ा हो जाएगा तथा छतरी छोटी रह जाती है। बैगों को खोलने के बाद लगभग एक सप्ताह में मशरूम की छोटी–छोटी कलिकाएँ बनने लग जाएगी जो 4 से 5 दिनों में पूरी आकार लें लेती है।

मशरूम की तुडाई करना– जब ढिंगरी पूरी तरह से परिपक्व हो जाए तब इनकी तुड़ाई की जानी चाहिए। ढिंगरी की छतरी के बाहरी किनारे ऊपर की तरफ मुड़ने लगे तो ढिंगरी तोड़ने लायक हो गई है। तुड़ाई हमेशा पानी के छिड़काव से पहले करना चाहिए। मशरूम तोड़ने के बाद डंठल के साथ लगे हुए भूसे को चाकू से काटकर हटा देना चाहिए। पहली फसल के 8–10 दिन बाद दूसरी फसल आ जाएगी। पहली फसल कुल उत्पादन का लगभग आधी या उससे ज्यादा होती है। इस तरह 3 फसलों तक उत्पादन ज्यादा होता है। उसके बाद बैगों को किसी गहरे गढ्ढे में डाल देना चाहिए जिससे उसकी खाद बन जाए। तथा खेतों में प्रयोग किया जा सकता है। जितनी भी व्यवसायिक प्रजातियां है उनमें एक किलो सूखे भूसे से लगभग 700 से 800 ग्राम तक पैदावार मिलती है।

भंडारण उपयोग– ढिंगरी तोड़ने के बाद उसे तुरंत पालीथीन में बंद नहीं करना चाहिए, अपितु लगभग 2 घटें कपड़े पर फैलाकर छोड़ देना चाहिए जिससे की उसमें मौजूद नमी उड़ जाए। ताजा ढिंगरी को एक छिद्रदार पॉलीथीन में भरकर रेफ्रिजरेटर में 2 सो 4 दिन तक रखा जा सकता है। ढिंगरी को ओवन में या धूप में सुखाया जा सकता है। ढिंगरी के विभिन्न प्रकार के व्यंजन जैसे ढिंगरी मटर, ढिंगरी आमलेट, पकोडा या बिरयानी बनाई जा सकती है। सूखी हुई ढिंगरी का प्रयोग भी सब्जी के लिए किया जा सकता है। इसलिए इसे थोड़ी देर गर्म पानी में डालकर प्रयोग किया जा सकता है। ताजा ढिंगरी का अचार तथा सूप भी बहुत स्वादिश्ट बनाया जा सकता है।

सावधानियां– ढिंगरी के फलन में अत्यधिक मात्रा में छोटे बीजाणु या स्पोर्स बनतें हैं जिन्हें सुबह उत्पादन कक्ष में धुएँ की तरह देखा जा सकता है। इन बीजाणुओं से अक्सर काम करने वाले लोगों को एलर्जी हो सकती है। अतः जब भी ढिंगरी तोड़ने उत्पादन कक्ष में प्रातः जाए तो खिडकी, दरवाजे इत्यादि 2 घंटे पहले खोल देने चाहिए तथा नाक पर कपड़ा लगाकर कमरों में जाना चाहिए।

फसल अवशेष न जलाएं बल्कि उसका प्रबंधन करें

देवेश कुमार, अरविंद कुमार सिंह एवं संदीप सिंह कश्यप

भारत मे प्रति वर्ष लगभग 500मिलियन टन परालीध्पुआल उत्पादन होती है पराली जलाने की समस्या सभी राज्यो मे है लेकिन पंजाब और हरियाणा में लगभग 30मिलियन टंन की पराली उत्पन्न होती है तथा उसका उपयोग किया जा सकता है। जैसेः बिजली उत्पादन, जैव ईधन, पशुओं को खिलाने, मशरूम उत्पादन मे, बिस्किट्स बनाने, और गर्मी (हीट जनरेशन) आदि जैसे वैकल्पिक उपयोग के लिए लगभग 7मिलियन टन (0.8मिलियन हेक्टेयर) को खेतो से हटाया जाता है निपटने के लिए एक आसान और त्वरित विधि के रूप में लगभाग 23मिलियन टन धान के भूसे (2.8 मिलियन टन) को खेत में जला दिया जाता है फसल अवशेष को जलाने से वातावरण में अत्यधिक प्रदूषण की समस्या होती है और मिट्टी में भारी पोषण हानी और शारीरिक स्वास्थ बिगड़ जाता है।

फसल अवशेष ना जलाये वल्कि उसका प्रबंधन करेः फसल अवशेष जलाने से वातावरण में होने वाली क्षतीःफसल अवशेष को जलाने से वातावरण प्रदुषित, मिट्टी के पोषक तत्वों की अत्यधिक क्षती एवं मिट्टी के भौतिक स्वास्थ पर प्रतिस्कूल प्रभाव पडता है। एक टंन धान के फसल अवशेष जलाने से 3.0किग्रा. कणिका तत्व, 92.0किग्रा कार्बन मोनोऑक्साइड, 1600किग्रा. कार्बन डाइऑक्साइड, 200किग्रा राख एवं 0.4किग्रा। सल्फर डाइऑक्साइड अवमुक्त होता है। इन गैसों के कारण समान्य वायु की गुणवत्ता मे कमी ,आखो मे जलन एवं त्वचा रोग तथा सुक्ष्म कड़ो के कारण जींड ह्रदय एवं फेफड़े की बीमारी होती है। फसल अवशेषो को जलाने से म्रदा ताप मे बड़ोतरी होती है, जिनके कारण वातावरन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। फसल के अवशेषो को जलाने से उनके जड़, तना, पत्तीयो मे संचित लाभदायक पोषक तत्वों का नष्ट हो जाना तथा फसल अवशेषो में लाभदायक मित्र कीट जलकर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण पर विरीत प्रभाव पड़ता है। पशुओं के चारे की व्यवस्था पर विरीत प्रभाव पर पड़ता है फसल अवशेष जलाने पर अलग–बगल के खेतो में आग लगाने की संभावना एवं खड़ी फसल अथवा आबादी में अग्निकाण्ड होने की संभावना बनी रहती है प्रमोशन ऑफ एग्रिकल्चर मेकेनाइजेसन फॉर इन .सीटू मैनेजमेंट ऑफ क्रॉप रेजिज्जडयू योजना अंतर्गत कृषि यंत्रों जैसेरू सुपर स्ट्रॉ प्रबंधन प्रणाली, हैप्पी सीडर, पैड़ी स्ट्रॉ चापर, श्रेडर, मल्चर, श्रब मास्टर, कटर कम स्प्रेडर, रिवेरसेबल एम बी प्लाऊ , रोटरी स्लेसर ,जीरो टिलेज सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल तथा रोटावेटर पर अनुदान उपलक्ध है इन यंत्रो का उपयोग कर फसल अवषेश को खेतो मे मिलाये और मिट्टी की उर्वरता बड़ाये रखना तथा धान की कटाई और गेहूँ की बुवाई के बीच उपलब्ध समय बहुत कम (20–30 दिन) होता है। वर्तमान में धान की कंबाइन से कटाई करने के बाद किसान फसल अवशेस को कुछ दिनों (4–5दिन) तक धूप में सुखाते हैं और फिर अगली फसल के लिए खेत तैयार करने से पहले उन्हें खेत में जला देते हैं। डिस्क हैरो, कल्टीवेटर और प्लेंकर का उपयोग करके और गेहूं, आलू को सीड ड्रिल/प्लांटर द्वारा बोएं

पुआल प्रबंधन के लिए दो वैकल्पिक और सुरक्षित तरीके। हालांकि, सुरक्षित निपटान के लिए एक विकल्प प्रतीत होता है, खेत से भूसे को बेल बनाकर और परिवहन करना.

इन–सीटू और एक्स–सीटू प्रबंधन–

एक्स–सीटू स्ट्रॉ प्रबंधन विकल्प अधिक पूंजी गहन हैं और किसानों और उपयोगकर्ता उद्योग को टिकाऊ होने के लिए महत्वपूर्ण सब्सिडी राशि की आवश्यकता होती हैं। किसानों को उपरोक्त फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी खरीदने हेतु 50 प्रतिशत तक का अनुदान उपलब्ध है उपरोक्त फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी के कस्टम हायरिंग केंद्र स्थपित करने हेतु 80 प्रतिशत तक का अनुदान उपलब्ध कराया जा रहा है। फसल

अवशेष ना जलाए बल्कि फसल अवशेष जलने वाले कृषको के विरुद्ध कार्यवाही करते हुए फसल अवशेष जलाने पर पकड़े जाने पर जुर्माने का प्रविधान किया गया। कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ स्ट्रा रीपरएसुपरस्टार मैनेजमेंट सिस्टम का प्रयोग अनिवार्य है अन्यथा की स्थिति में सिविल दायित्व निर्धारित किया जाएगा। पौधे के बढ़वार हेतु 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसमे कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन प्रकृतिक से प्राप्त होता है ये तत्व पौधों के लगभाग 95 प्रतिशत भाग के निर्माण में सहायक है। उक्त के अतिरिक्त नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर तथा सुझ्म पोषक तत्व के रूप में लोहा, जिंक आयरन, बोरान, मोलिब्डेनम, कॉपर, क्लोरीन तत्व पौधे के बढ़वार एवं उत्पादान में सहायक होते हैं। धान के पुआल को जलाने और हटाने का प्रभावः धान की पराली जलाने से पोषक तत्वों की हानि (प्रति टन) तथा मिट्टी पर (भौतिक, रासायनिक और जैविक गुण का प्रभाव पड़ता है।

धान की कटाई के बाद बची पराली को जलाने पर प्रशासन की ओर से लगाई गई रोक के बावजूद कुछ किसान खेत में ही उसे जला देते हैं। राउंड बेलर मशीन चलाने का एक एकड़ क्षेत्रफल में लगभग 1800 रुपये खर्च आता है एवं 13 से 16 क्विटल पुआल इकट्ठा होता है। दो रुपये प्रति किलोग्राम बेचने पर 2600 से 3200 रुपया कुल लाभ कमाया जा सकता है। इकट्ठा किए हुए पराली के बंडलों को पशु चारे के रूप में कुट्टी काटकर इस्तेमाल किया जाता है। बरसात के महीने तक अगर इसे सुरक्षित रखा जाए तो पांच से छह सौ रुपये प्रति क्विंटल पशु चारा कुट्टी बिक सकता है। इससे पराली जलाए जाने वाले प्रदूषण से निजात मिल जाएगी एवं किसानों की आमदनी भी होगी। राउंड बेलर मशीन जिसके द्वारा खेत में पड़े पराली को इकट्ठा किया जाता है। इससे पराली को जलाने से बचाया जा सकेगा। इसके अलावा खेत की मृदा स्वास्थ्य बरकरार रखी जाएगी एवं आगे आने वाले समय में फसल उत्पादकता में कमी नहीं होगी।विवरण हानि पोषक तत्व किलोग्राम/टन किलोग्राम/ हेक्टेयर रूपया/हेक्टेयर नाइट्रोजन 5.533.0370

विवरण	हानि
पोषक तत्व	किलो ग्राम/टनकिलो ग्राम/ हेक्टयररुपया/हेक्टयर
नाइट्रोजन	5.533.0370
फास्फोरस (20% हानि)	2.32.8240
पोटाश (20% हानि)	25.030.0700
सल्फर	1.27.2100
मिट्टी कार्बनिक कार्बन	400.02400.0–
कुल	1410

फास्फोरस (20) हानि (2.32.8240 पोटाश (20) हानि (25.030.0700 सल्फर 1.27.2100 मिट्टी कार्बनिक कार्बन 400.02400.0. कुल 1410 उक्तो से स्पस्ट है की पौधे के विभिन्न अंगो (जड़, तना, फूल, दाना आदि) के बढ्ने हेतु उक्त पोषक तत्व पौधो की जड़ों द्वारा पत्ति यों द्वारा, तनो द्वारा मृदा से अथवा वातावरण से ग्रहण करते है। जब किसान भाई खरीफ, रबी, जायद की फसलो की कटाई, मडाई करते हैं तो जड़, तना पत्तियों के रूपो में पांदप अवशेष भूमि के अंदर एवं भूमि के ऊपर उपलब्ध होते हैं इनको यदि लगभाग 20 किग्राम यूरिया प्रति एकड़ की दर से मिट्टी पलटने वाले हल से तथा रोटावेटर से जुताई/पलेवा के समय मिला देने से पादप लगभाग 20 से 30 दिन के भीतर जमीन में सड़ जाते हैं जिससे मृदा में कार्बोनिक पदार्थो एवं अन्य तत्वों की वृद्धि होती है फलस्वरूप फसल के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है यदि भूमि मै उक्त विधि से पादप अवशेष मिलाते हैं जहां पर कम्बाइन का प्रयोग फसलो के कटाई में करते हैं वहां पर फसलो के अवशेष डंठल केरूप में खड़े होते हैं एवं उनके जलाने पर नजदीक के किसानों की फसल में आग लगने की संभावना बनी रहती है, जिससे खडी फसल एवं आबादी में अग्निकांड होने की संभावना बनी रहती है वही आस–पास के खेत व खलियान तथा मकान में भी अग्निकाण्ड के करण अत्यधिक नुक्सान उठाना पड़ता है अतः प्रदेश के कृषको से अनुरोध है कि किसी भी फसल के अवशेष को जलाये नहीं बल्की मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि हेतु पादप आवेशेषों को मृदा मे मिलायें सड़ाये फसलों की कटाई यदि कम्बाइन मशीन से की जाती हैं तो किसान भाई रीपर युक्त अवशेष कम्बाइन मशीन का ही प्रयोग करें।

नकली एवं मिलावटी उर्वरकों की पहचान विधि

सुरेन्द्र प्रताप सोनकर*, सुरेश कुमार कन्नौजिया**, राजीव कुमार सिंह*** एवं लाल बहादुर गौड़****

खेती में प्रयोग में लाये जाने वाले कृषि निवेशों मे से सबसे मंहगी सामग्री रासायनिक उर्वरक है। खाद की कीमतें आसमान छू रहीं हैं, खाद की बढ़ती कीमतों के बीच किसान को नुकसान तब होता है जब ज्यादा से ज्यादा खाद डालने के बाद भी अच्छी पैदावार नहीं मिलती है। फसल में अच्छी पैदावार के लिए कहीं न कहीं नकली खाद ही जिम्मेदार होता है। उर्वरकों के शीर्ष उपयोग की अवधि हेतु खरीफ एवं रबी के पूर्व उर्वरक विनिर्माता फैक्ट्रियों तथा विक्रेताओं द्वारा नकली एवं मिलावटी उर्वरकों की समस्या से निपटने के लिए यद्यपि कि सरकार प्रतिबद्ध है फिर भी यह आवश्यक है कि खरीददारी करते समय किसान भाई उर्वरकों की शुद्धता मोटे तौर पर उसी तरह से परख लें, जैसे– बीजों की शुद्धता, बीज को दांतों से दबाने पर कट्ट और किच्च की आवाज से, कपड़े की गुणवत्ता उसे छूकर या मसलकर तथा दूध की शुद्धता की जांच उसे अंगुली से टपका कर लेते हैं।

कृषकों के बीच प्रचलित उर्वरकों में से प्रायः डी.ए.पी. जिंक सल्फेट, यूरिया तथा एम.ओ.पी. नकली/मिलावटी रूप में बाजार में उतारे जाते हैं। खरीददारी करते समय कृषक इसकी प्रथम दृष्टया परख निम्न सरल विधि से कर सकते हैं और प्रथम दृष्टया उर्वरक नकली पाया जाय तो इसकी पुष्टि किसान सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध टेस्टिंग किट से की जा सकती है। टेस्टिंग किट किसान सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध कराये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में विधिक कार्यवाही किये जाने हेतु इसकी सूचना जनपद के उप कृषि निदेशक (प्रसार)/जिला कृषि अधिकारी/कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं कृषि निदेशक, उत्तर–प्रदेश को दी जा सकती है।

उर्वरक का नाम – यूरिया

पहचान विधि :

1. सफेद चमकदार, लगभग समान आकार के गोल दाने।
2. पानी में पूर्णतया घुल जाना तथा घोल छूने पर ठण्डी अनुभूति।
3. गर्म तवे पर रखने पर पिघल जाता है और आंच तेज करने पर कोई अवशेष नहीं बचता।

उर्वरक का नाम – डी.ए.पी. (डाई)

पहचान विधि :

1. सख्त, दानेदार, भूरा, काला, बादामी रंग नाखूनों से आसानी से नहीं टूटता।
2. डी.ए.पी. के कुछ दानों को लेकर तम्बाकू की तरह उसमें चूना मिलाकर मलने पर तीक्ष्ण गन्ध निकलती है, जिसे सूंघना असह्य हो जाता है।
3. तवे पर धीमी आंच में गर्म करने पर दाने फूल जाते हैं।

उर्वरक का नाम – सुपर फास्फेट

पहचान विधि :

यह सख्त दानेदार, भूरा, काला, बादमी रंगों से युक्त तथा नाखूनों से आसानी से न टूटने वाला उर्वरक है। यह चूर्ण के रूप में भी उपलब्ध होता है। इस दाने दार उर्वरक की मिलावट बहुधा डी.ए.पी. एवं एन.पी. के मिक्चर उर्वरकों के साथ की जाने की सम्भावना बनी रहती है।

परीक्षण :

इस दानेदार उर्वरक को यदि गर्म किया जाये तो इसके दाने फूलते नहीं है जब कि डी.ए.पी. व अन्य कम्प्लेक्स के दाने फूल जाते हैं। इस प्रकार इसकी मिलावट की पहचान आसानी से कर सकते हैं।

उर्वरक का नाम – जिंक सल्फेट

पहचान विधि :

1. जिंक सल्फेट मैग्नीशियम सल्फेट प्रमुख मिलावटी रसायन है। भौतिक रूप में समानता के कारण नकली असली की पहचान कठिन होती है।
2. डी.ए.पी. के घोल में जिंक सल्फेट के घोल को मिलाने पर थक्केदार घना अवक्षेप बन जाता है। मैग्नीशियम सल्फेट के साथ ऐसा नहीं होता।
3. जिंक सल्फेट के घोल में पतला कास्टिक का घोल मिलाने पर सफेद, मटमैला मोड़ जैसा अवक्षेप बनता है जिसमें गाढ़ा कास्टिक का घोल मिलाने पर अवक्षेप पूर्णतया घुल जाता है। यदि जिंक सल्फेट की जगह पर मैग्निशियम सल्फेट है तो अवशेष नहीं घुलेगा।

उर्वरक का नाम – एम.ओ.पी. (पोटाश खाद)

पहचान विधि :

1. सफेद कणाकार, पिसे नमक तथा लाल मिर्च जैसा मिश्रण।
2. यह कण नम करने पर आपस में चिपकते नहीं।
3. पानी में घोलने पर खाद का लाल भाग पानी में ऊपर तैरता है।

*वि.व.वि. (प्रसार), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***वि.व.वि. (उद्यान), ****वि.व.वि. (बीज प्रौद्योगिकी) कृषि विज्ञान केन्द्र, बक्शा, जौनपुर–प्रथम

किसान एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की ओर बढ़ाये अपने कदम

अभिषेक यादव, अनिल कुमार पाल एवं संजीत कुमार

वर्तमान समय में जहां एक ओर उत्तम किस्मों के आने से तथा उत्तम फसल प्रबंधन अपनाने से फसल की पैदावार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर कृषि पारिस्थितिक तन्त्र में भौतिक, जैविक सस्य परिवर्तनों के कारण फसल में तरह–तरह के कीड़ों व बीमारियो में भी वृद्धि हुई है। इन कीड़ो व बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए किसानों ने रासायनिक दवाईयों को मुख्य हथियार के रूप में अपनाया। ये कीटनाशक किसानों के लिए वरदान सिद्ध हुए लेकिन आगे चलकर इनसे अनेक समस्याएं पैदा हो गईं। अन्धाधुन्ध कीटनाशकों के इस्तेमाल से हमारा वातावरण दिन प्रतिदिन ज्यादा से ज्यादा प्रदूषित हो रहा है, जिसका प्रभाव मानव जाति पर तथा अन्य प्राणियों पर भी बहुत बुरा पड़ रहा है। विभिन्न प्रकार की बीमारियां पैदा हो रही है, जिनका इलाज भी आसानी से संम्भव नहीं है।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन क्या है?

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें फसलों को हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों से बचाने के लिए किसानों को एक से अधिक तरीकों को जैसे व्यवहारिक, यांत्रिक, जैविक तथा रासायनिक नियंत्रण इस तरह से क्रमानुसार प्रयोग में लाना चाहिए ताकि फसलों को हानि पहुंचाने वालें की संख्या आर्थिक हानिस्तर से नीचे रहे और रासायनिक दवाईयों का प्रयोग तभी किया जाए जब अन्य अपनाए गये तरीके सफल न हों।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की आवश्यकता क्यों?

दिन प्रतिदिन फसलों में रासायनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है जिससे रासायनों के अवशेषों की मात्रा भी वातावरण में बढ़ती जा रही है जिससे मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के स्वास्थय पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और कई प्रकार की बीमारियां जन्म ले रही हैं।

रासायनों के अन्धाधुन्ध तथा बिना सोचे समझे बार–बार प्रयोग से कीड़ों तथा बीमारियों में प्रतिरोधक क्षमता पैदा हो जाती है जिससे रासायनों के निर्धारित मात्रा का प्रयोग करने से ये कीड़े या बीमारियां नही मरती बल्कि कुछ दिनों के बाद इनकी संख्या और बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थिति में रासायनों का प्रयोग करना पर्यावरण के प्रदूषण को बढ़ाना है।

फसलों को हानि पहुचानें वाले कीड़े को मारने वाले कीडे वातावरण में हमेशा मौजूद रहते हैं जिससे हानिकारक तथा लाभदायक कीड़ो का प्राकृतिक संतुलन हमेशा बना रहता है और फसलों का कोई आर्थिक हानि नही पंहुचती। लेकिन रासायनिक दवाईयों के प्रयोग से मित्र किड़े शीघ्र मर जाते हैं क्योंकि वे प्रायः फसल की ऊपरी सतह पर शत्रु कीड़ो की खोज में रहते है। रासायनिक दवाईयों के प्रयोग से किसानों का फसल उत्पादन खर्च बढ़ जाता है जिससे किसानो के लाभ में काफी कमी हो जाती है। रासायनो के दुष्प्रभावों को ध्यान में रखते हुए किसानों के लिये एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन विधि अपनाना अनिवार्य है।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के लिए मूलभूत आवश्यकताएँः

स्वच्छ एवं स्वस्थ बीज।

स्वच्छ खेत अथवा रोग जनक मुक्त मृदा।

खड़ी फसल में एक रोगजनक के प्रवेश एवं उसके संक्रमण की रोकथाम।

फसल अथवा उत्पाद की कटाई एवं भंडारण के समय सावधानियाँ प्रमुख होती है।

समन्वित रोग प्रबंध कार्यक्रम के उददेश्य

रोग के रोगजनक के प्रारम्भिक संरोप को कम करना ।

प्रारम्भिक निवेश द्रव्य की Effectiveness को कम या समाप्त करना।

परपोषी पौधे में रोगजनक के विरूद्ध प्रतिरोध में वृद्धि करना।

रोग के द्वितीयक प्रसार या फैलाव एवं रोगजनक के द्वितीयक चक्र को धीमा करना ।

कृषि उत्पादन में कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त करने तथा साथ साथ वातावरण को प्रदूषण से बचाना।

फसल की बुराई से लेकर कटाई तक हानिकारक कीड़ो, बीमारियों तथा उनके प्राकृतिक शत्रुओं की

(शेष पृष्ठ 25 पर)

कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहांव़, बलिया–उत्तर प्रदेश, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं पौ0 वि0वि0 कुमारगंज – अयोध्या– उत्तर प्रदेश

बेहतर स्वास्थ्य एवं आय का स्रोत गृहवाटिका

एस. पी. सिंह, एवं एस. के. तोमर

सब्जी दैनिक आहार का एक आवश्यक अंग है मनुष्य के आहार में सब्जियों का समावेश उन्हें स्वस्थ बनाए रखने के लिए नितांत आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ भोजन में आवश्यक विटामिन, लवण, कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन प्रचुर मात्रा में प्रदान करती हैं मांस, पनीर तथा अन्य वसीय खाद्य पदार्थों के पाचन के दौरान बने अम्लों को निष्प्रभावित करने के लिए सब्जियों का सेवन आवश्यक है। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद के अनुसार प्रतिव्यक्ति के लिए प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियों का सेवन आवश्यक है, जिसमें 100 ग्राम पत्तेदार सब्जियोंः 100 ग्राम जड़वाली सब्जियों एवं 100 ग्राम अन्य सब्जियाँ सम्मिलित होना आवश्यक है।

किसी भी मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य का सीधा संबंध उसके द्वारा ली जाने वाले भोजन की खुराक से है। आजकल सब्जी उत्पादन में अत्यधिक मात्रा एवं गलत तरीके से प्रयोग हो रहे कीट एवं रोगनाशक रसायनों का काफी अंश हमारे द्वारा प्रयोग की जाने वाली सब्जियों के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर रहा है जिस कारण मनुष्य के शरीर में दिन–प्रतिदिन प्रतिरोधक क्षमता कम हो रही है एवं तरह–तरह की बीमारियां प्रवेश कर रही हैं। यदि गृहवाटिका में स्वयं द्वारा जैविक विधि से तैयार की गई सब्जियों का सेवन किया जाए तो न केवल हमारे संपूर्ण सेहत में सुधार लाती हैं अपितु शरीर को रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करती हैं।

गृहवाटिका मे विभिन्न प्रकार की सब्जियों एवं फल उगाए जा सकते हैं, यह विटामिन, फोलिक एसिड, खनिजलवण, रेशा और प्रतिउपचायक जैसे पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। एक योजनाबद्ध तरीके से बनाई गई गृहवाटिका से परिवार के सदस्यों को वर्षभर प्रमुख खाद्य पदार्थों सहित पौष्टिक आहार प्राप्त हो सकता है। गृहवाटिका बनाने से पूर्व निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक हैः–

गृहवाटिका हेतु चयनित स्थान थोड़ा ऊंचा हो एवं बरसात के समय जल निकास की समुचित व्यवस्था हो।

सूर्य का प्रकाश पूरे दिन उपलब्ध हो ताकि पौधों का विकास अच्छी प्रकार से हो सके।

सिंचाई की उचित व्यवस्था हो।

गृहवाटिका की मिट्टी उपजाऊ हो।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 200 वर्गमीटर क्षेत्रफल मे तैयार गृहवाटिका द्वारा वर्षभर

सब्जियों की उपलब्धता रहती है एवं एक आदर्श परिवार जिसमें कुल 7 सदस्य हो उनकी सब्जियों की कुल आवश्यकता का 97 प्रतिशत सब्जियां गृहवाटिका द्वारा उपलब्ध हो जाती हैं।

गृहवाटिका की प्रत्येक क्यारी में निरंतर सब्जी उत्पादन हेतु फसलचक्रः

क्यारी नं0 1ः भिंडी (फरवरी– जुलाई) लौकी (जुलाई – अक्टूबर) मेथी (नवंबर – जनवरी)

क्यारी नं० 2ः सब्जी मटर (अक्टूबर – दिसंबर) मूली (जनवरी – फरवरी) तोरई (मार्च – जुलाई)

क्यारी नं० 3ः टमाटर (अक्टूबर – फरवरी) लौकी (मार्च – जून) भिंडी (जुलाई – सितंबर)

क्यारी नं० 4ः सरसों, बथुआ (अक्टूबर – नवंबर) गाजर (नवंबर – फरवरी) मिर्च (मार्च – सितंबर)

क्यारी नं0 5ः शिमला मिर्च (सितंबर – फरवरी) चौलाई (मार्च – अप्रैल) बैंगन (मई –अगस्त)

क्यारी नं0 6ः आलू (अक्टूबर – फरवरी) करेला (मार्च – जुलाई) सागाप्याज (अगस्त – सितंबर)

क्यारी नं0 7ः प्याज (अक्टूबर – जनवरी) धनिया (फरवरी – मार्च) चौलाई (अप्रैल – जून) धनिया (जुलाई – सितंबर)

क्यारी नं0 8ः फूलगोभी (मार्च – जून) अगेती फूलगोभी (जुलाई –अक्टूबर) पालक, सोया (नवंबर –फरवरी)

क्यारी नं0 9ः करेला मचान (मार्च – सितंबर) तोरई मचान (जुलाई – अक्टूबर) लौकी मचान (सितंबर –फरवरी)

क्यारी नं० 10ः परवल (अक्टूबर – मार्च) खीरा (अप्रैल – जुलाई) मूली (अगस्त – सितंबर)

गृहवाटिका की बाढ़ फेंसिंग पर दरवाजे की तरह सेम एवं अन्य 3 साइड पर लौकी, करेला, तोरई, खीरा, परवल के पौधों की रोपाई करें ।

मेंड़ों के ऊपर शलजम, चुकंदर, मूली, गाजर, धनिया, सौंफ की बुवाई करें।

अगेती सब्जियों तथा लतावर्गीय सब्जियों हेतु नर्सरी में लोटनल तैयार कर रोपाई करें।

गृहवाटिका के एक तरफ फलदार पौधे जैसे–पपीता, नींबू, अमरूद, अनार आदि का रोपण अवश्य करें।

कृषि विज्ञान केंद्र बेलीपार, गोरखपुर

विभिन्न सब्जियों की उन्नतिशील एवं संकर किस्मों का चुनाव

सब्जी	उन्नत किसमें	संकर किस्में
लौकी	पूसा नवीन, काशी गंगा, काशी बहार, नरेंद्र रश्मि, पूसा संदेश	पूसा हाइब्रिड– 3, अनोखी, सरिता, माही गोल्ड
करेला	पूसा पूर्वी, पूसा रसदार, पूसा विशेष, पूसा दो मौसमी	पूसा हाइब्रिड– 4, पूसा हाइब्रिड– 2, रॉकर, चमन, प्राची
तोरई (नेनुआ)	पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा, काशी दिव्या, पूसा चिकनी	एस.–16, वाइट सीडेड, एनबीएच–3304, श्रावणी, अविर
खीरा	पूसा संयोग, पूसा उदय, पूसा बरखा	ममता, एनबीएच– 842, मानवीप्लस, नायरा
टमाटर	पूसा गौरव, पूसा रूबी, हिसार अनमोल	पूसा संकर 2, अविनाश– 2, एन. एस.– 4266, एन.एस.–– 2535
बैगन	पूसा श्यामल, अर्का नवनीत, पंत सम्राट, काशी संदेश	पूसा हाइब्रिड– 6, पूसा हाइब्रिड– 9, नरेंद्र हाइब्रिड बैंगन– 1, नरेंद्र हाइब्रिड बैंगन– 2
मिर्च	पूसा ज्वाला, अर्का श्वेत, काशी अनमोल, पूसा सदाबहार, अर्का ख्याति	अग्नि, रेखा, ज्योति, तेजस्विनी, सुपरहॉट, एन.एस.– 1701
शिमला मिर्च	अर्का गौरव, अर्का वसंत, अर्का मोहिनी, इंदिरा, अर्का अतुल्य	हीरा, ग्रीनगोल्ड, भारत, लैरियो, लारा
फूलगोभी	अर्लीकुवांरी, काशीगोभी–25, पूसा मेघना, सबौर अग्रिम, पंतगोभी–2, नरेंद्रगोभी–1	बरखा, श्वेता, एनएच– 60, एनएच– 66, पूसा कार्तिकी शंकर, पूसा हाइब्रिड, माधुरी
पातागोभी	पूसा अगेती, पूसा मुक्ता, गोल्डन एकर, पूसा ड्रमहेड	श्रीगणेश , ग्रीन चौलेंजर, बहार, एन. एस. – 22, शुभम
मूली	पूसा चेतकी, पूसा रेशमी, पूसा हिमानी, काशी श्वेत	डिंपी, इंडियन क्वीन, मास्टर, पाली
गाजर	पूसा केसर, पूसा वृद्धि, पूसा यमदागिनी	रेडकोर, श्यामली, सैमसंग, ओरांजा, एनएस– 854
भिंडी	काशी प्रगति, काशी लालिमा, काशी विभूति, नरेंद्रभिंडी– 40, परभनी क्रांति, अर्का अभय	एनबीएच– 5004 सारिका, प्रिया, प्रभा, रेशम
प्याज	पूसा रेड, एग्रीफाउंड, लाइटरेड, नासिक रेड, पूसारत्नार	लुसीफर, एन–53, गजराज, टोपाज, जूनी
धनिया	पंत हरिता, पंत धनिया– 1, नरेंद्र धनिया– 1, पंजाबकटुई	सुरभि, कल्मी, महक, कस्तूरी, मृदुल

विभिन्न सब्जियोंमे जैविक विधि द्वारा कीट रोग प्रबंधन

पंचगव्यः पंचगव्य बनाने के लिए 400 ग्राम गाय का घी, 1 लीटर गोमूत्र, 1 लीटर गाय का दूध तथा 1 किलोग्राम गाय का गोबर एवं 100 ग्राम गुड़ को मिलाकर मौसम के अनुसार 4 से 7 दिन तक रखें इसे बीच–बीच में हिलाते रहे इसके बाद इसे छानकर 1:10 के अनुपात में पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करें। पंचगव्य से सामान्य कीट एवं बीमारियों पर नियंत्रण के साथ–साथ फसल को आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध होते हैं।

नीम की पत्तियांः एक किलोग्राम नीम की पत्तियों को रातभर पानी में भिगो दें अगले दिन सुबह पत्तियों का अच्छी तरह पीसकर 10 लीटर पानी में मिलाकर छान लें शाम को छिड़काव करें। इससे कवक जनित रोगों, सूंडी, माहूं के नियंत्रण हेतु अत्यंत लाभकारी है।

नीम की खलीः भूमि में फफूंदनाशक एवं कीटनाशक के रूप में 10 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से नीम की खली का प्रयोगकरें।

अग्नि अस्त्रः तना कीट, फलों की सूंडी एवं इल्लियों के नियंत्रण के लिए इसका प्रयोग करते हैं इसे बनाने के लिए 20 लीटर गोमूत्र, 5 किलोग्राम नीम की पत्ती की चटनी, 500 ग्राम तंबाकू पाउडर, 500 ग्राम तीखी हरीमिर्च, 500 ग्राम देसी लहसुन की चटनी को एक मिट्टी के बर्तन में लेकर आग पर रखें एवं चार बार उबाल आने तक गर्म करें तत्पश्चात 48 घंटे के लिए छायादार स्थान पर रखें इसके पश्चात सुबह – शाम घड़ी की सुई की दिशा में लकड़ी की सहायता से चलाएं 6 से 8 लीटर अग्निअस्त्र को छानकर 200 लीटर पानी में मिलाकर फसलों पर छिड़काव करें। एक बार बना अग्निअस्त्र 3 माह तक प्रयोग में ला सकते हैं।

कीट नियंत्रण की अन्य विधियांः

गंधपाशः यह एक ऐसा यंत्र है जिसका उपयोग पतंगो को फंसाने के लिए किया जाता है इसका प्रयोग हमेशा के साथ किया जाता है लिऊर से एक विशेष प्रजाति के मादा कीट की गंध निकलती है जिससे

गृह वाटिका द्वारा एक आदर्श परिवार हेतु सब्जियों की आवश्यकतानुरूप उपलब्धता एवं आय व्यय विवरण

सीजन	गृहवाटिका का क्षेत्रफल (वर्ग मीटर)	परिवार में कुल सदस्यों की संख्या	प्रतिदिन प्रति व्यक्ति सब्जियों की आवश्यकता (किग्रा में)	विभिन्न सीजन में विभिन्न सब्जियों की आवश्यकता (किग्रा में)	विभिन्न सीजन में विभिन्न सब्जियों की उपलब्धता (किग्रा में)	सब्जियों की उपलब्धता (प्रतिशत में)	सब्जी उत्पादन में लागत (रूपए)	विभिन्न सब्जियों से कुल आय (रूपए)	शुद्ध लाभ (रूपए)	आय व्यय अनुपात
खरीफ सीजन जुलाई से अक्टूबर	200	7	300	258.3	247.7	35.89	1236	5099	3863	4.12
रबी सीजन नवंबर से फरवरी	200	7	300	252.0	261.7	103.84	1434	6751	5317	4.7
जायद सीजन मार्च से जून	200	7	300	256.2	234.0	91.33	1250	6857	5606	5.48
वार्षिक जुलाई से जून	200	7	300	766.5	743.5	97.0	3922	18706	14784	4.77

नरकीट आकर्षित होकर पाश में फंस जाते हैं। गोभी के गदहिला कीट, भिंडी व बैंगन के फली छेदक कीट के नियंत्रण हेतु काफी उपयोगी है।

प्रकाश प्रपंचः तना छेदक व फली छेदक कीटों के लिए यह काफी उपयोगी है। इसके द्वारा शाम के समय अंधेरा शुरू होते ही एक लंबे डंडे को गृहवाटिका में गाड़कर इसके ऊपर लालटेन या बल्ब जलाकर लटका दिया जाता है इसके नीचे एक टब में पानी व मिट्टी तेल का घोल रख दिया जाता है इस तरह प्रकाश से आकर्षित होने वाले कीड़े लालटेन या बल्ब से टकराकर मिट्टी तेल व पानी के घोल दाले द्रव में गिरकर मर जाते हैं चूंकि ये कीड़े शाम में 2 से 3 घंटे तक ही उड़ते हैं अतः इस क्रिया को 3 घंटे तक ही करना चाहिए इससे फसल को काफी सुरक्षा होती है। प्रकाश प्रपंच सभी फसलों के तना छेदक कीड़ों पर प्रभावी है।

ट्राइकोडर्माः सब्जियों को फफूंदी जनित रोगों से बचाव के लिए ट्राइकोडुर्मा से बीज शोधन करें एवं ट्राइकोडर्मा एवं सड़ीगोबर की खाद को 1:25 के अनुपात में मिलाकर भूमि में प्रयोग करें।

(पृष्ठ 09 का शेष)

निराई–गुड़ाई–

लहसुन की जैविक फसल से अच्छी उपज और गुणवत्तायुक्त कंद प्राप्त करने के लिए समय से निराई–गुड़ाई करके लहसुन की क्यारी को साफ रखना आवश्यक है। पहली निराई रोपण या बुआई के एक माह बाद एवं दूसरी निराई, पहली के एक माह बाद अर्थात बुआई के 60 दिन बाद करनी चाहिए। कंद बनने के तुरन्त पहले निराई–गुड़ाई करने से मिट्टी ढ़ीली हो जाती है।

जिससे बड़े आकार के तथा जवे से अच्छी तरह भरे कंदों को बनने में सुगमता होती है। लहसुन की जड़े अपेक्षाकृत कम गहराई तक जाती है इसलिए गुड़ाई हमेशा उथली करके खरपतवार निकाल देते हैं। बुआई के 45 दिन पश्चात् एक बार निराई–गुड़ाई कर देने से फसल अच्छा पनपती है।

खुदाई एवं भंडारण–

जिस समय लहसुन की जैविक फसल की पत्तियां पीली पड़ जाये तथा सूखने लग जायें, फसल को परिपक्व समझना चाहिए। इसके बाद सिंचाई बंद कर देनी चाहिए और 15–20 दिनों बाद कंदों की खुदाई कर लेना चाहिए। लहसुन की फसल किस्म एवं मिट्टी के अनुसार बुआई के लगभग 4–5 माह बाद तैयार हो जाती है।, जब कंद अच्छी तरह पक जाये तब खुरपी की सहायता से खुदाई मैनुअली की जानी चाहिए।

खुदाई के बाद कंदों को 3–4 दिनों तक छाया में सुखा लेते हैं, फिर 2–2.5 सेमी. छोड़कर पत्तियों को कंदों से अलग कर कंदों को साधारण भण्डारण में पतली तह में रखते हैं। फर्श पर नमी नहीं होनी चाहिए, लघु कृशकों को सीमित क्षेत्र में लहसुन की खेती करने पर खुदाई के बाद सम्पूर्ण पौध के साथ ही छाया में बांस के टट्टर या रस्सियों पर टांगकर भण्डारित करना चाहिए।

पैदावार–

लहसुन की जैविक खेती की पैदावार किस्म के चयन, देखभाल और अन्य सस्यक्रियाओं पर निर्भर करती है लेकिन उपरोक्त तकनीक से लहसुन की जैविक खेती से 100 से 225 क्विंटल पैदावार प्रति हे. तक प्राप्त हो जाती है।

पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन वृद्धि में प्रोबायोटिक का महत्व एवं उपयोग

एस.के. सिंह*, एस.के. तोमर** एवं आर. आर .सिंह***

प्रोबायोटिक (प्राजीवी) एक ग्रीक शब्द है जिसका प्रयोग सर्वप्रथम पारकर नामक वैज्ञानिक ने सन् 1974 ई ० में किया । इसका प्रयोग उन सूक्ष्माणुओं और पदार्थों के लिए किया गया जो पाचननलीय सूक्ष्माणुओं का संतुलन बनाए रखने में सहयोगी हैं। बाद में फुल्लर साहिब ने इसकी पुनः व्याख्या एक सजीव सूक्ष्माणु खाद्य योगज (माइक्रोबियल फीड एडिटिव) के रूप में की जो पशु की पाचन नली में सूक्ष्म जीवाणुओं का संतुलन सुधारकर लाभदायक प्रभाव पैदा करते हैं।

जुगाली करने वाले पालतू पशुओं के दैनिक आहार में रेशेदार खाद्य पदार्थों जैसे भूसा , कड़वी और हरे चारे की मात्रा अधिक होती है परन्तु इन पशुओं में आहार के रेशेदार घटक को पचाने की क्षमता नहीं होती। इसलिए प्रकृति ने इन पशुओं के आहार नाल के अगले भाग को विकसित करके उनमें कई प्रकार के लाभकारी सूक्ष्माणुओं के निवास और वर्धन के लिए उपयुक्त वातावरण का प्रावधान किया है । पशुओं की पाचन नली में पाए जाने वाले सुक्ष्माणु दाने – चारे के रेशों को पचाने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं जिसके परिणामस्वरूप दाने – चारे से वाष्पशील वसा अम्ल बनते हैं और ये अम्ल पशु को उर्जा प्रदान करते हैं। नवजात रोमान्थी पशुओं की पाचन नली लगभग जीवाणुहृदीन होती है परन्तु जन्म के बाद जब बछड़े बाहर के वातावरण, प्रौढ़ पशु और उनके जूठे आहार के सम्पर्क में आते हैं तो उनकी पाचन नली में जीवाणु प्रवेश करके अपना स्थाई आवास बना लेते हैं। पशुओं की पाचन नली में स्थापित यह जैवाणुविक वातावरण उनकी विभिन्न प्रकार की बीमारियों से रक्षा करके तथा आहार को सुपाच्य खाद्यों में परिवर्तित करके इसकी पौष्टिकता को बढ़ाते हैं। पशु के पूर्ण विकसित रूमेन में सूक्ष्माणुओं का एक जटिल सामुदायिक वातावरण होता है जो रोमान्थी पशुओं द्वारा लिग्रिन युक्त सेलुलोजिक (रेशेदार) खाद्यों को पचाने में सहायक होता है। आहार नली में जैवाणविक संरचना के सन्तुलन में किसी भी प्रकार की वाधा पशुओं पर बुरा प्रभाव डालती है तथा इस जैवाणविक संरचना में सुधार से पशुओं की उत्पादकता में सुधार की संभावना रहती है।

सूक्ष्माणुविक खाद्य योगजों (माइक्रोबियल फीड एडिटिव) के प्रकार

विभिन्न प्रकार के सूक्ष्माणुओं जैसे बैक्टीरिया (लैक्टोबैसिलस, बैक्टरायड्स, ल्यूकोनॉस्टॉक, पेडियोकाकस, स्ट्रेप्टेकाक्स) और कवकों (एस्पर्जिलस ओराइजी, सक्रोमाइसिज सेरेविसी, कैन्डिडा पिन्टोलोपसाइ) का सफलतापूर्वक उपयोग सूक्ष्माणविक खाद्य योगजों के रूप में किया गया। भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान के पशु पोषण विभाग में किए गए अनुसंधानों के परिणामों में सैक्रोमाइसिज सेरेविसी और लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस बहुत उपयोगी पाए गए।

लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया

पशुओं की पाचन नली में प्रायः आंत्रीयविषजनी बैक्टीरिया आंत से चिपककर विषकारी पदार्थों का उत्सर्जन करते हैं जो धारक पशु के लिए हानिकारक हो सकते हैं। गाय और भैंस के बछड़ों में प्रायः आंत्रीय बैक्टीरिया के हानिकारक प्रभाव से अतिसार के लक्षण उत्पन्न होते हैं जिसके कारण इस अवधि में मृत्यु और बीमारी की दर बहुत अधिक होती है। जुगाली करने वाले पशुओं के नवजात बछड़ों और अस्वस्थ पशुओं में लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया का उपयोग सिर्फ उत्पादन बढ़ाने के लिए ही नहीं बल्कि उनकी आहार नली के सूक्ष्माणुविक परिवेश को सामान्य बनाने के लिए भी किया जाता है। नवजात बछड़ों के आहार में लैक्टोबैसिलाई से किण्वित दूध पिलाने पर अतिसार की उग्रता में कमी आती है और पशु कम समय में ठीक हो जाते हैं। लैक्टोबैसिलाई पाचन नली में अधिक मात्रा में एसिटिक और लैक्टिक अम्ल का उत्पादन करते हैं जिसके कारण आहार नली के द्रव्य की क्षाराम्ल प्रतिक्रिया (पी एच) घट जाती है। ये कार्बनिक अम्ल आंतों में नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के लिए हानिकारक होते हैं और इनकी विषाक्तता घटे पी एच पर कई गुना बढ़ जाती है। लैक्टिक अम्ल उत्पादन के

*एस.एम.एस. (पशुपालन), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बेलीपार, गोरखपुर ***अपर निदेशक प्रसार आ.न.दे.कृ. एवं प्रो.वि.वि.

कारण ही लैक्टोबैसिलस का एन्टीरोबैक्टीरियम और साल्मोनेल्ला पर विरोधी प्रभाव होता है।

पशुओं में अतिसार के रोगाणुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी के लिए उनका आंत्रभित्ति पर चिपकना अनिवार्य है। इससे आंतों के क्रमाकुंचन द्वारा उनकी निष्कासन दर भी घट जाती है। लैक्टोबैसिलस का प्रोवायोटिक के रूप में होने वाले लगभग सभी परीक्षणों में यह पाया गया है कि आंतों में कालोनी बनाने के लिए इसकी स्पर्धा रोगाणुओं से रहती है और इसमें लैक्टोबैसिलस की क्षमता अधिक होने से ये रोगाणुओं को आहार नाल से बाहर निकाल देते हैं। इसीलिए गाय और भैंस के नवजात बच्चों को लैक्टोबैसिलस खिलाने की राय दी जाती है। लैक्टोबैसिलस की विभिन्न प्रजातियों द्वारा कई प्रकार के प्रतिजीवी प्रभाव वाले तत्व जैसे एसिडोफिलिन, एसिडोलिन, लैक्टोबैसिलिन और लैक्टोडिन इत्यादि उत्पन्न होते हैं जोकि साल्मोनेलला, शिगेला, प्रोटियस, क्लेबसिल्ला, आंत्रीय रोगकारी इश्वीरिशिया कोलाई, बैसिलस, स्यूडोमोनास आदि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। लैक्टोबैसिलाई द्वारा उत्पादित हाइड्रोजन परआक्साइड कम पी एच पर अपनी ज्यादा शक्तिशाली रोगाणुनाशी क्षमता के कारण रोगाणुओं को मारने में आशिक रूप से जिम्मेवार है।

खमीर / यीस्ट

रोमान्थी पशुओं के आहार में खमीर के प्रयोग से आहार नली के पी एच में स्थिरता आने से सेलुलोज पचाने वाले बैक्टीरिया की संख्या बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण बनता है । रूमेन में खमीर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण लक्षण आक्सीजन उपभोग है। दाना – चारा खाने के साथ – साथ जुगाली करने वाले पशु हवा में मिश्रित आक्सीजन भी ग्रहण करते हैं जिसका रूमेनी सूक्ष्माणुओं के क्रिया – कलाप पर बुरा असर पड़ता है क्योंकि अधिकांश रूमेनी सूक्ष्माणुओं के लिए आक्सीजन हानिकारक है। इस तरह यीस्ट खाने के साथ रूमेन में जाने वाली आक्सीजन का उपभोग करके रूमेनी सूक्ष्माणुओं को आक्सीजन के हानिकारक असर से बचाते हैं।

सैक्रोमाइसिज सेरिवेसी विटामिन और अन्य आवश्यक तत्व प्रदान करके रूमेन के कवक नियोकैलिमैस्टीक्स फ्रांटिलिस के जूस्पोर के अंकुरण और सेलुलोज तोड़ने तथा लैक्टिक अम्ल खाने वाले बैक्टीरिया की संख्या को बढ़ाकर सेलुलोज पचाने की क्षमता बढ़ाते हैं।

पशुओं को प्रोबायोटिक खिलाना

प्रोबायोटिक को कम तापक्रम पर सुखाकर चूर्ण अथवा गोली या आहार में मिलाकर खिलाते हैं। सामान्य दशा में पोष्य माध्यम (निमग्न किण्वन) में सूक्ष्माणुओं का संवर्ध बनाए रखना बहुत ही कठिन कार्य है। प्रोबायोटिक संवर्ध (ठोस माध्यम किण्वन)– से किण्वित खाद्य का उत्पादन एक अच्छा विकल्प है और यह विधि बहुत ही सस्ती तथा सरल और कृषकों द्वारा आसानी से अपनाने योग्य है। किण्वित खाद्य में सूक्ष्माणुओं की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है । किण्वित खाद्य में चूंकि सूक्ष्माणु कब अवस्था में होते हैं इसलिए पशु की पाचन नली में पहुंचते ही अपना प्रभाव डालना शुरू कर देते हैं जबकि चूर्ण या गोली में सूक्ष्माणु निष्क्रिय अवस्था में होते हैं इसलिए पशु की पाचन नली में पहुंचने के बाद सक्रिय होने के लिए थोड़ा समय लेते हैं तथा इनकी संख्या भी धीमी गति से बढ़ती है किण्वित खाद्य में बैक्टीरिया और उनके द्वारा उत्पादित उपापचय पदार्थ दोनों ही होने से वे अधिक प्रभावशाली होते हैं । बिना किसी यंत्र का उपयोग कर अधिक मात्रा में सूक्ष्माणु उत्पादन के लिए ठोस माध्यम किण्वन विधि को आधार मानकर प्रोबायोटिक बनाने हेतु कुछ प्रयोग किए गए ताकि हमारे किसान भाई आसानी से प्रोबायोटिक अपने घर पर बनाकर जानवरों को खिला सकें। गांव में पशु पालकों द्वारा पशुधन उत्पादन में सुधार हेतु प्रोबायोटिक का दैनिक उत्पादन आवश्यक है। इसीलिए पशु पालकों को इसे अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रोबायोटिक उत्पादन की विधि सस्ती और सरल हो। ये सभी गुण ठोस माध्यम किण्वन विधि में उपस्थित हैं। मक्के के दलिया और गेहूं के चोकर को ठोस माध्यम किण्वन विधि से प्रोबायोटिक बनाने के लिए प्रयोग किए गए और यह पाया गया कि इनके साथ किसी अन्य तत्व विशेष की आवश्यकता नहीं पड़ती। चूंकि ये दोनों चीजें पशु आहार में बहुतायत में प्रयोग की जाती हैं तथा इससे पशु पालकों द्वारा प्रोबायोटिक उत्पादन में किसी प्रकार की असुविधा होने की बहुत ही कम संभावना है।

किण्वित खाद्य उत्पादन के लिए सूक्ष्माणु द्वारा ठोस माध्यम किण्वन विधि बहुत अच्छी विधि है। आक्सीजन

की उपस्थिति में बढ़ने वाले सूक्ष्माणुओं द्वारा ठोस माध्यम किण्वन की कुछ अपनी सीमाएं हैं जैसे इस माध्यम में आक्सीजन की उपलब्धि हर जगह समान नहीं होती है और उससे कार्बन डाइआक्साइड का निष्कासन भी कम होता है परन्तु इस प्रकार की समस्याएं कुछ विशेष प्रकार के सूक्ष्माणुओं जैसे लैक्टोबैसिलस और खमीर के साथ नहीं है। अन्न के दलिया अथवा चोकर को जल के साथ लगभग 1 : 2 के अनुपात में मिश्रित करने पर एक गीला मिश्रण तैयार हो जाता है। मिश्रण में जल की मात्रा 1 : 2 से बढ़ाकर 1 : 4 का अनुपात करने पर भी उत्पाद के गुणों पर बुरा असर नहीं पड़ता है परन्तु मिश्रण की मात्रा बढ़ जाने से अधिक अथवा बड़े बर्तनों की आवश्यकता पड़ती है। ठोस और जल का अनुपात 1 : 2 से कम रखने पर मिश्रण प्रायः पूरी तरह गीला नहीं हो पाता है और गर्म तथा शुष्क वातावरण में उसमें जामन डालकर किण्वित करने पर नमी और घट जाने से किण्वन क्रिया अधूरी रहने की संभावना रहती है । इसलिए उचित किण्वन हेतु खाद्य और जल में 1 : 2 का अनुपात बहुत अच्छा पाया गया है। पशुओं को खिलाए जाने वाले दाने में जल मिलाने पर उनमें तथा जल में उपस्थित सूक्ष्माणुओं का बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। इस मिश्रण में खमीर अथवा लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया को अधिक तेजी से बढ़ाकर अन्य नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के बढ़वार को रोककर अपनी संख्या बढ़ाने की क्षमता रखनी पड़ती है। सामान्य दशा में खाद्य को गर्म कर अथवा उबाल कर सूक्ष्माणु हीन करने के बाद ही किण्वन हेतु जरूरी सूक्ष्माणुओं का जामन डाला जाता है परन्तु मक्के के दलिया और चोकर को बिना उष्मा उपचार के भी खमीर अथवा लैक्टोबैसिलस से किण्वित करने पर वांछित प्रकार का किण्वित खाद्य योगज प्राप्त किया जा सकता है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन दोनों प्रकार के सूक्ष्माणुओं में हानिकारक सूक्ष्माणुओं की बढ़वार को समाप्त करके अपने को बढ़ाने की क्षमता है। किण्वित खाद्य पदार्थों की अम्लता बढ़ाकर तथा कार्बनिक अम्ल उत्पन्न कर उसमें उपस्थित हानिकारक सूक्ष्माणुओं की बढ़वार को नियंत्रित अथवा समाप्त करने की क्षमता लैक्टिक अम्ल उत्पादी बैक्टीरिया में है। इसी प्रकार यह क्षमता खमीर में भी पाई जाती है जिसके कारण खमीरी खाद्य योगज में भी अवांछित सूक्ष्माणु नहीं पाए जाते हैं । यह संभवतः इसके द्वारा उत्पादित इथेनाल के कारण होता है जोकि नुकसानदायक सूक्ष्माणुओं के लिए प्रतिरोधी है। इसलिए इन सूक्ष्माणुओं द्वारा खाद्यों का वांछित किण्वन करने के लिए किसी प्रकार के पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं है तथा प्रोबायोटिक प्राशन हेतु ठोस माध्यम किण्वन विधि पशु पालक सुगमता पूर्वक अपना सकते हैं।

पशुओं हेतु सूक्ष्माणवी खाद्य योगज (प्रोबायोटिक) का उत्पादन

किण्वित दूध

लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस का खाद्य योगज बनाने के लिए दूध का माध्यम लिया जाता है। दूध को उबालकर सामान्य तापक्रम तक ठंडा करने के बाद उसमें 2 प्रतिशत की दर से लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस का जामन मिश्रित करके लगभग 12 घंटे तक रखने पर किण्वन क्रिया पूरी हो जाती है द्य अब बब्चों की आवश्यकतानुसार केवल यही किण्वित दूध अथवा इसको दूध के साथ आंशिक मात्रा में खिलाया जा सकता है।

किण्वित ठोस खाद्य (अन्न/चोकर) एवं इसके गुण

मक्ले का दलिया अथवा गेहूं का चोकर या दोनों के मिश्रण के 10 कि ० ग्रा ० में 20 लीटर जल अच्छी प्रकार मिश्रित कर उसमें लैक्टोबैसिलस एसिडोफिलस अथवा सैकेरोमाइसिज सेरेवेसी का जामन 2 प्रतिशत की दर से मिश्रित कर अच्छी प्रकार ढककर कमरे के सामान्य तापक्रम पर किण्वित होने के लिए लगभग 24 घंटे तक रखा जाता है। इसके बाद यह किण्वित खाद्य योगज, प्रोबायोटिक प्रशु प्राशन के लिए तैयार हो जाता है। इस किण्वित खाद्य पदार्थ को अगले दिन के खाद्य को किण्वित करने के लिए जामन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है परन्तु ऐसी परिस्थिति में जामन की मात्रा बढ़ाकर 10 प्रतिशत करनी पड़ती हैद्य दो सप्ताह बाद लैक्टोबैसिलस अथवा खमीर का नया जामन बनाकर इस्तेमाल करना चाहिए। इससे किण्वित खाद्य योगज की गुणवत्ता बनी रहती है। किण्वित खाद्य महक रोचक होती है। किण्वित खाद्य सुनहरे पीले रंग का होता है। इसमें किसी प्रकार के बाहरी कवक का प्रदूषण नहीं होता है।

मुर्गी पालन मे आवास का महत्व

अमित कुमार सिंह, आर के सिंह एवं संदीप कुमार

प्रस्तावनाः मुर्गीपालन किसानों के लिए एक स्थायी विकल्प के रूप में उभर रहा है ताकि उनकी स्थायी आजीविका सुचारु ढंग से चले। आवास मुर्गीपालन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। यह मुर्गी पालन का अपरिहार्य हिस्सा है। इसका मतलब न केवल उन्हें जीवित रखना है बल्कि उन्हें बेहतर तरीके से विकसित करने में मदद करना है। जब हम उचित आवास की अवधारणा के साथ स्पष्ट होते हैं तो एक अच्छा और किफ़ायती आवास एक आसान तरीके से किया जा सकता है। यह कोई रॉकेट साइंस नहीं है। अगर कुछ प्रमुख पहलुओं पर ध्यान दिया जाए तो इसे आसानी से बनाया जा सकता है। इस लेख मे हमें ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यों और बिंदुओं के बारे में बताया गया है।

मुर्गी पालन के लिए उचित आवास का निर्माण करते समय निम्न मुख्य बिंदुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिएः–

1. पोल्ट्री आवास का ओरिएंटेशन (दिशा)
2. आवास सामग्री का प्रकार और छत की ढलान
3. पोल्ट्री आवास में वेंटिलेशन (हवा के आदान–प्रदान) की सुविधा ताकि पोल्ट्री के लिए एक नियंत्रित और अनुकूल वातावरण बनाए रखा जा सके
4. विभिन्न प्रकार के चूजों और अन्य मुर्गे पक्षियों के लिए उचित प्रकार के फीडर और पानी के बर्तन
5. पोल्ट्री हाउस में नमी के स्तर और धूल का **नियंत्रण**
6. पोल्ट्री के दो शेड के बीच की दूरी।

पोल्ट्री आवास की अभिमुखताः–

जिस क्षेत्र में मुर्गीपालन करना होता है, उस क्षेत्र में मौसमी परिस्थितियों के साथ पोल्ट्री आवास में परिवर्तन किया जाता है। मुख्य रूप से भारतीय जलवायु की परिस्थितियों में मुर्गी आवास दो प्रकार के होते हैं। अधिकांश भारतीय क्षेत्रों में पोल्ट्री घर की लंबी धुरी पूर्व से पश्चिम दिशा में होनी चाहिए, हालांकि भारत के तटीय भागों में उत्तर से दक्षिण दिशा में लंबी धुरी बनाई जानी चाहिए। ऐसा करने से सूर्य की किरणों का सदुपयोग करने में मदद मिलती है और मुर्गी आवास के अतिरिक्त गरम होने के खतरे को भी कम करता है। जब सूरज विपरीत दिशा में होता है, इस प्रकार के आवास निर्माण से दोनों तरफ छाया उत्पन्न होती है जो मुर्गी पालन के लिए फायदेमंद होता है। साथ ही मुर्गी आवास के लिए हमें पोल्ट्री आवास की छत को उल्टे ट आकार का बनाना चाहिए।

आवास सामग्री का प्रकार और छत का ढलानः–

मुर्गी आवास की छट मे उपयोग किए जाने वाली मे मुख्यतः कंक्रीट, टाइल्स, छप्पर या धातु अथवा फाइबर की चादरों का उपयोग किया जाता है। छत के दोनों तरफ़ों के ढलान का माप 30–35 डिग्री से जादा नहीं होनी चाहिए, जो टाइल छत में 20–25 डिग्री और धातु की चादर के लिए 15 डिग्री हो जाती है। किसी भी मामले में यह 45 डिग्री से अधिक नहीं होना चाहिए। छप्पर से बनी छत को पोल्ट्री आवास के लिए बहुत अच्छा माना जाता है और यह आर्थिक भी है लेकिन यह समस्याग्रस्त हो जाता है क्योंकि इसे नियमित मरम्मत की आवश्यकता होती है और आग लगने की संभावना भी हो सकती है। कंक्रीट और टाइल वाले छत सामग्री बहुत टिकाऊ हैं लेकिन वे इतने किफायती नहीं हैं। इसलिए किसान को सामग्रियों की उपलब्धता और खर्च पर खास ध्यान देना चाहिय। घर के फर्श और छत के बीच की दूरी 10–15 फीट होनी चाहिए। छत के किनारों को 2–3 फीट बाहर की तरफ बढ़ाया जाना चाहिए जो अवांछित बारिश और हवा को रोकने में मदद करता है।

पोल्ट्री आवास में हवा के आदान–प्रदान की सुविधा

मुर्गी आवास में अनुकूल परिस्थितियों को बनाए रखने के लिए हवा के उचित आदान–प्रदान की सुविधा सुनिश्चित करना बहुत महत्वपूर्ण है। यह दोनों चूजों और मुर्गी के लिए रहने की स्थिति को नियंत्रित करने में मदद करता है। शेड के दो किनारों को उचित वायुप्रवाह के लिए खोला जाना चाहिए। हालांकि, ठंड के काल मे इसे प्लास्टिक शीट से बने किफायती पर्दे

कृषि विज्ञान केंद्र, अमिहित, जौनपुर, आचार्य नरेंद्र देवा कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्विद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

की मदद से आंशिक रूप से और पूरी तरह से बंद किया जा सकता है। इससे आवास के तापमान को नियंत्रित किया जा सकता है और मुर्गियों के लिए बेहतर वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

चूजों और अन्य मुर्गे पक्षियों के लिए उचित प्रकार के फीडर और पानी के बर्तन : –

चूजे और मुर्गी दोनों के लिए उचित प्रकार के खाना देने वाले बर्तन (फीडर) की लागत और उपलब्धता के आधार पर प्लास्टिक, मिट्टी, मिट्टी, एल्यूमीनियम निर्मित का चयन किया जा सकता है। पक्षियों के लिए फीडर को इस तरह से बनाया जाना चाहिए ताकि इसे सुखाकर बनाए रखा जा सके और पक्षियों के गले के स्तर तक आसानी से भोजन पहुंच सके। इसी तरह पानी का बर्तन ऐसा होना चाहिए जो पक्षियों को पानी पीने में मदद कर सके। यह टिकाऊ, किफायती और साफ करने में आसान होना चाहिए।

पोल्ट्री हाउस में नमी के स्तर और धूल का रखरखाव :

अक्सर पाया जाता है की अधिक नामी और गर्मी की वजह से बहुत सारी मुर्गियाँ या तो मर जाती हैं या उनका उत्पादन न्यून हो जाता है। साथ ही अधिक धूल के कारण भी उन्हे खासी दिक्कत होती है। इसलिए हमे मुर्गी आवास बनाते समय नमी और धूल नियंत्रण पर ध्यान देना चाहिए। पोल्ट्री हाउस में नमी का प्रतिशत 55–60 के बीच होना चाहिए और धूल यथासंभव न्यूनतम होनी चाहिए। हवा में किसी भी प्रकार की गंध नहीं होनी चाहिए। वायु का वेग लगभग 2– 5 किमी / घंटा होना चाहिए। शेड के अंदर अव्यवस्थित और सुखद वातावरण बनाए रखा जाना चाहिए।

पोल्ट्री के दो शेड के बीच की दूरी : –

पोल्ट्री शेड की चौड़ाई 9 मीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए जिससे हवा का आदान प्रदान ठीक से हो सके और तापमान को नियंत्रित किया जा सके जबकि, लंबाई शेड में पक्षियों की संख्या के साथ बढ़ाया या घटाया जा सकता है। दो शेडों के बीच की न्यूनतम दूरी 10 मीटर होनी चाहिए। यह फैलने वाली बीमारियों और संदूषण को रोकने में मददगार हो सकता है।

निष्कर्ष : –

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुर्गीपालन किसानों के लिए एक स्थायी विकल्प के रूप में उभर रहा है ताकि उनकी स्थायी आजीविका चलायी जा सके। आवास मुर्गीपालन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। यह मुर्गी पालन का अपरिहार्य हिस्सा है। अगर कुछ प्रमुख पहलुओं पर ध्यान दिया जाए तो इसे किफ़ायती और आसानी से बनाया जा सकता है।

(पृष्ठ 17 का शेष)

लगातार एवं व्यवस्थित निगरानी रखना।

कीड़ो एवं बीमारियो को उनके आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखने के लिए सभी उपल्बध नियंत्रण विधियों यथायोग्य प्रयोग करना।

कीड़ो एवं बीमारियो के आर्थिक हानि स्तर (ई.आई. एल) को पार कर लेने पर सुरक्षित कीटनाशकों को सही समय पर सही मात्रा में प्रयोग करना।

समन्वित रोग प्रबंधन क्रियान्वयन में बाधाएँ

1.संस्थागत बाधाएँः

समन्वित कीट नियंत्रण कार्यक्रम विभिन्न विभागों के परस्पर समन्वय के द्वारा सफलतापूर्वक संचालित एवं क्रियान्वित किया जा सकता है । विभिन्न विभागों के मध्य किसी भी तरह के असंतुलन से कार्यक्रम के क्रियान्वयन में विघ्न उत्पन्न होता है । अनुसंधान व प्रसार विभागों के मध्य सकारात्मक सोच के साथ इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की भावना अत्यंत आवश्यक है तभी यह कार्यक्रम सफलता से क्रियान्वित होगा ।

2.सूचनागत बाधाएँः

किसानों व प्रसार कार्यकर्ताओं तक सही सूचनाओं का सही समय तक पहुँचना अत्यंत आवश्यक है जिसकी सर्वत्र कमी महसूस होती है । प्रायः सूचनाओं का सही समय तक प्रसारित न होना इस कार्यक्रम की सफलता में बड़ी बाधा उत्पन्न करता है ।

3.सामाजिक बाधाएँः

कीटनाशक निर्माता कंपनियों एवं विक्रेताओं का लुभावना व आकर्षक प्रचार कार्यक्रम, विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों की बाजार में सहज उपलब्धता, इनके उपयोग में आसानी एवं शीघ्र परिणाम किसानों को इसी ओर अधिक आकर्षित करते हैं जिसके कारण कीटनाशकों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है तथा समन्वित कीट प्रबन्धन कार्यक्रम की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान आकृष्ट होता है ।

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. आर.आर. सिंह
प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

(1) धान में जल भराव की दशा में नीम कोटेड यूरिया का ही प्रयोग करें तथा यूरिया की टॉप ड्रेसिंग के पूर्व खेत से पानी निकाल लें! यदि संभव नहीं हो तो 2.0 प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव करें।

(2) खैरा रोग की दशा में 5 किग्रा जिंक सल्फेट चूने के पानी के साथ अथवा 2 प्रतिशत यूरिया घोल के साथ पर्णीय छिड़काव करें।

(3) जल भराव वाले क्षेत्रों में सल्फर की कमी के कारण नयी पत्तियां पीली निकलती हैं। सल्फर की कमी पूर्ण करने हेतु 20–30 किग्रा प्रति हे0 की दर से वेंटोनाइट सल्फर या 2 कु0 प्रति हे0 जिप्सम का छिडकाव करें।

(4) तोरिया की बुवाई 15 सितम्बर के बाद मानसून जाने के तुरन्त बाद करें। 4 किग्रा बीज प्रति हे0 की दर से बुवाई करें तथा 20 किग्रा सल्फर का प्रयोग तिलहन में अवश्य करें अथवा फास्फोरस की मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट से दें जिससे सल्फर की पूर्ति हो सके।

सब्जी एवं उद्यान में

अश्वनी कुमार सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

(1) जाड़े एवं बसन्त वाली टमाटर तथा बैंगन की पौध इस माह के प्रथम एवं दूसरे पखवारे में डालें।

(2) मुख्य समय में तैयार होने वाली गोभी की पौध माह के प्रथम सप्ताह में डालें तथा पिछैती एवं मध्यम किस्मों की पौध माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(3) अगेती पात गोभी की पौध इस माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(4) परवल के तने की रोपाई 1.5 गुणे 1 मीटर के फासले पर 2700 कटिंग प्रति एकड़ के हिसाब से इस माह में भी कर सकते हैं। प्रत्येक कटिंग 90 सेमी की होनी चाहिये।

(5) नये बाग लगाने का यह सर्वोत्तम माह है। पहले से तैयार गड्ढो में पौधों की रोपाई करें। यदि पहले से गड्ढे नहीं तैयार किये गये हैं तो आम, आँवला, बेर के लिये 75 सेमी व्यास तथा इतने ही गहराई के गड्ढे खोदकर खाद एवं मिट्टी की समान मात्रा भरकर पौधे रोपित कर सकते हैं।

(6) पुराने बागों की एक अच्छी जुताई कर दें, जिससे गिरी हुई पत्तियाँ एवं अन्य कूड़ा करकट सड़ सकें और खर–पतवार नष्ट हो सके।

(7) आम, अमरूद, बेर, आँवला, कटहल आदि का प्रबन्ध कलम चश्मा विधि द्वारा इस माह के प्रथम सप्ताह तक पूरा कर लें।

फसल सुरक्षा

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) धान में खैरा रोग के नियंत्रण के लिए 5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 20 किग्रा यूरिया अथवा 2.5 किग्रा बुझे हुए चूने को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(2) धान की फसल में कीटों के नियंत्रण के लिए फास्फेमेडान 250–300 मिली प्रति हेक्टेयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(3) मक्का में तुलसिता रोग के नियंत्रण के लिए जिंक कार्बोमेट रसायन 2 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(4) तिलहनी फसलों में पर्ण चित्ती तथा जीवाणु झुलसा रोग नियंत्रण के लिये जिंक कार्वामेट रसायन 2 किग्रा तथा स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम अथवा एग्रीमाइसीन 100 (75 ग्राम) को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(5) धान में तना छेदक के नियंत्रण के लिये कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 3–5 सेमी खड़े पानी में 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में बिखेर दें अथवा फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(6) हरा, सफेद एवं भूरा फुदका के नियंत्रण के लिये फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(7) धान में जीवाणु झुलसा बीमारी लगने पर खेत का पानी निकाल कर 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व कापर आक्सीक्लोराइड 500 ग्राम को 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से 2–3 छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर करें।

(8) धान में झोंका रोग नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 1 किग्रा या एडिफेनफास 1 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

(9) बैंगन की फसल को तना व फलीबेधक कीट हानि पहुँचाता है। रोगग्रस्त भाग को काट देना चाहिये तथा प्रभावित कटे भाग को जला देना चाहिये। फेनवालरेट 20 ईसी 750 मिली या डिलमेथरिन 28 ईसी 450 मिली या साइपरमेथरीन 10 ईसी 750 मिली को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. सुरेन्द्र सिंह

विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान)

(1) भैंसों में ब्यांत का समय चल रहा है अतः नवजात पड़वा/पड़िया को भैंस का प्रथम दूध खींस तीन दिन तक अवश्य पिलाएं। इसमें बच्चों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव की सम्भावना बढ़ जाती है।

(2) पशुओं को जहरी बुखार, लंगड़िया तथा गलाघोंटू बीमारी का टीका यदि अभी तक न लगा हो तो इस माह में अवश्य लगवा दें।

(3) मुर्गियों से अधिक अण्डा व मांस उत्पादन के लिए उन्हें बहुत दिनों का पुराना दाना नहीं देना चाहिए, क्योंकि बरसात के मौसम में दानें में फफूँदी लगने की सम्भावना अधिक रहती है।

(4) गर्भवती भैंस को पौष्टिक दलहनी चारा के अतिरिक्त खनिज लवण एवं विटामिन युक्त आहार दें।

(5) ब्रायलर मुर्गियों के प्रबन्धन पर विशेष ध्यान रखें। बरसात में बिछावन गीला होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः समय–समय पर गुड़ाई करके बिछावन गीला होने से बचायें।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : मोथा घास का निदान कैसे करें?

(श्री गजेन्द्र यादव, ग्राम गयासपुर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : मोथा घास के नियंत्रण के लिये खेत की ग्रीष्मकालीन 2–3 बार जुताई करें। खरीफ में धान उगाने के लिये लेवा करके अंकुरित बीज बोयें अथवा पौध रोपें। धान, मक्का, गन्ना, ज्वार तथा बाजरा की शुद्ध फसल में संस्तुति के अनुसार 2,4– डी शाकनाशी का प्रयोग करें। वर्षा और ग्रीष्मकाल में सघन उगने वाली और जल्दी बढ़ने वाली फसलें लगाना अच्छा होगा। प्रत्येक फसल में बुवाई के बाद 15–20 दिन की अवस्था पर पहली निराई तथा इतने ही अन्तराल पर दूसरी निराई अवश्य करें। बाद की निराई आवश्यकतानुसार करें। निराई–गुड़ाई के समय इस घास को समूल निकालकर नष्ट कर दें। बिरल या अधिक फासले पर लगाई जाने वाली फसलों में गन्ने की पत्ती, पुआल अथवा जलकुम्भी बिछाने से बहुत अच्छे परिणाम मिले हैं। गेहूँ, धान आदि फसल की एक माह की अवस्था पर वासाग्रान 2 लीटर प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मोथा के साथ–साथ अन्य दूसरी घासें भी नष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न : बैंगन की पौध को कीड़े पत्तियाँ एवं डण्ठल काट रहें हैं, इसकी रोकथाम कैसे करें?

(श्री जितेन्द्र सिंह, ग्राम बहादुरगंज, जनपद अयोध्या)

उत्तर : बैंगन में तना छेदक एवं फल छेदक कीड़े लगे हैं। इस कीड़े के आक्रमण करने के पहले ही उपाय करना चाहिये, क्योंकि यह कीड़ा जब अन्दर घुस जाता है तो दवा असर नहीं करती है। अतः कीड़े लगने से पहले ही छिड़काव करना चाहिये। इसके नियंत्रण के लिये 2 मिली मैलाथियान को एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिये अथवा फास्फेमिडान 100 ईसी 250 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

प्रश्न : मुर्गीपालन प्रारम्भ करना चाहते हैं, कैसे करें?

(श्री रज्जन, गोपालपुर, जनपद अमेठी)

उत्तर : मुर्गीपालन दो प्रकार से किया जाता है एक अण्डा उत्पादन के लिये, दूसरा मांस (ब्रायलर) उत्पादन। अण्डा उत्पादन हेतु सबसे अच्छी नस्ल ह्वाइट लेगहार्न पायी जाती है जो वर्ष भर में लगभग 280–300 अण्डे का उत्पादन करती है। इसके लिये बिछावन पद्धति और केज पद्धति से मुर्गियों को पाला जाता है। दूसरा ब्रायलर पालन जिसे पूर्वांचल में बहुत से किसानों द्वारा किया जा रहा है। यह बहुत कम समय में अर्थात 25–30 दिन में 1200–1500 ग्राम वजन तक हो जाता है जिसे बाजार के आवश्यकता अनुसार छोटा अथवा बड़ा करके बेच दिया जाता है। ब्रायलर पालन के लिये जहाँ मुर्गी घर बनाना है वह जगह ऊँचा होना चाहिये, पानी न रूकता हो, बाजार के नजदीक तथा आने जाने के लिय सड़क होना आवश्यक है। एक ब्रायलर के लिए एक वर्गफुट स्थान की जरूरत पड़ती है जिसे अच्छे प्रबन्धन एवं संतुलित आहार खिलाकर कम समय में अधित लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अधिक जानकारी के लिये आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र पर आकर सम्पर्क कर सकते हैं।

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्ज़ियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से डॉ. आर.आर. सिंह अपर निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित